आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

ACCREDITED GRADE 'A' BY NAAC

NIRF All India 14th Rank

समन्वय

सम्पादकीय

समन्वय का यह अंक आप लोगों के हाथ में है । जैसा कि आप जानते हैं समन्वय छात्रों द्वारा सम्पादित अन्तर–अनुशासनिक पत्रिका है । इसके माध्यम से अलग अलग विषयों मे अध्यनरत हम छात्रों की रचनात्मक प्रतिभा को सामने लाने का प्रयास किया जाता है । प्रस्तुत अंक में हम छात्रों द्वारा लिखित कविता,कहानी एवं विद्वानों से लिए गए साक्षात्कार हमारी रचनात्मक पहल के प्रमाण हैं । इस प्रक्रिया में हमें बहुत कुछ सीखने समझने का अवसर मिलता है, इस अवसर का हम कितना लाभ उठा पाए हैं यह आपकी प्रतिक्रिया बताएगी ।

मित्रों यह महीना (मार्च) शहीदों का है । इसी महीने सन् 1923 में शहीद भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु ने देश की स्वतंत्रा के लिए अपना बलिदान दिया था । उन शहीदों की याद में हमारा शत–शत नमन । आज के दिन इन शहीदों को फिर से याद करना हमारे लिए जरूरी है । जरूरी इसलिए क्योंकि हमारा समय देश प्रेम की जगह दुष्ट प्रेम में बदल रहा है । एक अमूर्त देश के नाम पर हम मूर्त देश की समस्याओं और चिंताओं से अनजान बन रहे हैं । ऐसे में भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु की याद हमें यह बताती है कि देश से प्रेम करने के लिए हमें देश की मिट्टी, उसकी जनता और उसके रोज–ब–रोज की जिन्दगी की समस्याओं से प्रेम करना होगा । जब तक देश का एक भी नागरिक अपनी जरूरत को पूरा करने से महरूम है तब तक देश प्रेम के नाम पर किसी तरह का हंगामा खड़ा करना या किसी तरह के चिन्हों या प्रतीकों को लेकर आपस में मतभेद कायम करना देश प्रेम का मजाक उड़ना है । अपने शहीदों की याद में हम सबको देश प्रेम की उस सच्ची भावना से जुड़ना चाहिए जिसमें हमारी भाषा, हमारी जीवनशैली, हमारा खान–पान , हमारे पर्व–त्यौहार तथा हमारे संस्कारों की विविधता और इन सबके बीच मौजूद एकता की भावना महत्वपूर्ण है। वह एकता की भावना जो हमें याद दिलाती है कि हम एक दूसरे की भिन्नता और विविधता को स्वीकार और सम्मान करते हुए एक राष्ट्र के नागरिक हैं । कोई विशेष चिन्ह या प्रतीक हमें बांटने के लिए नहीं एक करने के लिए हो सकता है । जो हमारी एकता का बाधक है, वह हमारी राष्ट्रीयता और देश प्रेम के लिए भी घातक है ।

साथियों यह महीना हिंदी के प्रसिद्ध कवि केदारनाथ सिंह के लिए भी जाना जाएगा जिनका पिछले 19 मार्च को देहांत हो गया । हम समस्त छात्र समूह उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। केदारनाथ सिंह हिंदी के उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से भारतीय ग्रामीण जीवन और उसकी प्रकृति को जिंदा रखा । गाँव और शहर के बीच यात्रा करता एक कवि, उनकी कविता में जीवन के गहरे द्वंदों और तनावों को व्यक्त करता हुआ दिखाई देता है । देशी मुहावरों और लोक–भाषा के माध्यम से उन्होंने हिंदी कविता को अलग अंदाज दिया । जीवन और समाज की संवेदना के विशेष पहलुओं को व्यक्त किया । उनकी कविता पढ़ते हुए ऐसा लगता है जैसे एक पूरा का पूरा पुरबिया (पूर्व का) समाज और उसका लोकमन तेज भागते और दौड़ते शहर में अपने को तलाश रहा हो जैसे शहर में जीते हुए भी उसका गाँव, उसकी प्रकृति, उसके लोक जीवन की सहजता उसका पीछा नहीं छोड़ रही । वह जहाँ भी जाता है उन्हें साथ लिए जाता है, उन्हें साथ–साथ जीता है ।

इस अंक में हम अपने इस प्रिय कवि की एक 'पानी की प्रार्थना' कविता आपके लिए प्रस्तुत कर रहे हैं । साथ ही मैथिली के प्रसिद्ध रचनाकार हरिमोहन झा के कुछ पत्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जो पत्र लेखन की परंपरा का एक अनूठा उदाहरण है । इसके साथ ही स्टीफेन ज्विग की कहानी "धरती की ममता" और लू सुन की कहानी "वह अभागा!" इस अंक में विशेष रूप से पठनीय हैं । उम्मीद है हम छात्रों का यह रचनात्मक प्रयास आपको पढने का आनंद देगा । ऐसा संभव है कि इसमें कुछ त्रुटियां भी होंगी जो आप लोगों के द्वारा चिन्हित की जाएंगी। इस तरह हमारी सीखने की प्रक्रिया निरंतर जारी रहेगी ।

–छात्र संपादक मंडल

विषय - सूची

1.	मैं दलित हूँ	– विकास सिंह पटेल	2
2.	मातृभाषा और संस्कृति	– आशीष दीक्षित	2
3.	अजनबी	– हर्षिता शंकर	3
4.	आँसू	– प्रियंका ढाका	4
5.	खुशी कैसे मिलेगी?	– सौरभ कुमार आर्य	4
6.	अभागा कौन है ?	– सौरभ कुमार आर्य	5
7.	उदासी–1 व 2	– ओम जी द्विवेदी	5
8.	तैयार हो गयी मैं भी	– चेतना	6
9.	देखा है जब से तुमको	– रंजना	6
10.	मैंने एक इंसान बनाया	– तपेश गौतम	7
11.	दहकता तेजाब	– वेता गुप्ता	7
12.	आ अब लौट चलें...	– सौरभ मौर्य	8
13.	मैत्रेयी पुष्पा से वागीशा और अविनाश की बातचीत		9
14.	क्या खोया, क्या पाया	– ओम जी द्विवेदी	13
15.	आज की रात कटेगी कैसे–1 व 2	– अर्पित शुक्ला	15
16.	आया वसंत	– करनेश	15
17.	'महानायक मेजर ध्यानचंद'	– शुभम कुमार	16
18.	अनकही यादें.....	– ईड़ा मिश्रा	17
19.	पाँच पत्र	– हरिमोहन झा	18
20.	धरती की ममता	– स्टीफन ज्विग	21
21.	वह अभागा!	– लू सुन	25
22.	मॉडर्न समाज	– मोनिका	28
23.	किसानों द्वारा आत्महत्या : एक दुःखद पक्ष	– मोहम्मद आजम	30
24.	आवाम की आवाज	– सन्नी कुमार	31
25.	हुक्के का बढ़ता चलन	– साँईं विश्वकर्मा	31
26.	आओ बुनें कहानी....	– विशाल स्वरुप ठाकुर	32
27.	लोक नाटक : नये सन्दर्भ	– विशाल स्वरुप ठाकुर व अलोक कुमार वर्मा	34
28.	सरहद	– दीपक तेंगुरिया	35
29.	जो कुछ है, बस आज है	– अक्षय	36
30.	हरीश चौधरी के कुछ मुक्तक	– हरीश चौधरी	37
31.	।।दो सुई उस प्रकाल के।।	– शुभांगी अंग्रेजी विभाग	37
32.	'पदमावती . एक विवाद'	– सोनू	38
33.	लोकरंग मंच के बदलते सरोकार	– शिल्पा ध्यानी व विशाल स्वरुप ठाकुर	39
34.	डॉ गंगा प्रसाद विमल जी से विशाल स्वरुप ठाकुर की बातचीत		41
35.	वो मुझको सोचा करती है.....	– प्रस्तुति, स्वतंत्र कुमार सिंह	44

मैं दलित हूँ

– **विकास सिंह पटेल**
हिंदी विभाग, द्वितीय वर्ष

मैं कौन हूँ? यह कौन जाने?
मेरे दर्द को मेरी कौम जाने।
आँसू पीकर, मैं रहा
घुठनों के बल फिर मैं चला।
समाज ने मुझे, धोखा दिया
घुट–घुट कर फिर मैं जिया।
थक चुका हूँ मैं इस कदर
मिट गई है मेरी सारी डगर।
बस यूँ हीं छिप जाती हैं राहें
कट चुकी हैं मेरी बाहें।
मर चुके हैं मेरे अरमान,
टूट गए मेरे प्यारे प्राण।
बस बच गया है एक ढ़ेर,
माटी में मिलेगा एक दिन यह शेर।
कोई पूछे मैं कौन हूँ?
मैं दलित हूँ, मैं दलित हूँ, मैं दलित हूँ.....
क्या कहूँ, मैं कौन हूँ?
इज्जत नहीं, वह कौम हूँ।
नफरत नहीं, सम्मान हूँ।
जुल्म की आवाज़ हूँ।
क्या मैं समाज का गुलाम हूँ?

मातृभाषा और संस्कृति

– **आशीष दीक्षित**
रसायन व विभाग

भारत क्षेत्रफल एवं जनसंख्या की दृष्टि से अत्यंत विशाल देश है। यहाँ विभिन्न राज्यों में अलग अलग भाषाएँ बोली जाती हैं किन्तु जो भाषा सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधती है वह है –हिंदी तभी तो कमलापति त्रिपाठी ने हिंदी को भारतीय संस्कृति की आत्मा कहा है स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात हिंदी को राजभाषा का सम्मानजनक दर्जा तो मिल गया, मगर यह तब भी राज काज की भाषा न बन सकी शासनतंत्र एवं कार्यालयी क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन काल से चली आ रही है अंग्रेजी में कार्य करने की परिपाटी अब भी चली आ रही है।

अंग्रेजी एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय भाषा है जो बड़ी–बड़ी कम्पनियों एवं विदेशों में रोजगार प्राप्त करने का माध्यम बन चुकी है लेकिन इस कारण से हिंदी के अपमान एवं अवहेलना को तर्कसंगत नहीं ठहराया जा सकता। हिंदी देश को भावनात्मक एकता के सूत्र में बाँधने में सक्षम भारत की एकमात्र भाषा है। हिंदी की प्रगति हेतु भारतेंदु हरिश्चंद्र की पंक्तियाँ आज भी उल्लेखनीय हैं–

"निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के शूल।।

देश को आजादी मिलने के उपरान्त जो मुद्दे सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण थे उसमें राष्ट्र भाषा तय करने का मसला भी था चूँकि देश अलग–अलग भाषा व बोली बोलने वाले समुदायों में बंटा हुआ था, इसलिए यह संभव नहीं था कि एक भाषा से पूरा देश सहमत हो।

उत्तर भारतीय प्रांत चाहते थे कि हिंदी को राष्ट्र भाषा बनाया जाये, जबकि दक्षिण भारतीय प्रांत इससे सहमत नहीं थे इसी उहापोह के बीच देश के नीति नियंताओं ने संविधान बनाने का उपक्रम शुरू किया।

संविधान का प्रारूप अंग्रेजी में बना, संविधान की बहस अंग्रेजी में हुई यहाँ तक के अधिकांश पक्षधर भी अंग्रेजी भाषा में बोले। 12 सितम्बर 1949 को शाम चार बजे शुरू हुई बहस अगले दो दिनों तक चलती रही और आखिरकार 14 सितम्बर 1949 के दिन समाप्त हुई।

अफसोस कि संविधान सभा में जिन लोगों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की पैरवी की वे अंग्रेजी में ही बोले ए जमकर बहस हुई परन्तु स्पष्ट नतीजा नहीं निकला तब संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र प्रसाद नें अंग्रेजी में ही संक्षिप्त भाषण दिया। उन्होंने कहा – "भाषा के विषय में आवेग उत्पन्न करने या भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए अपील नहीं होनी चाहिए। भाषा के प्रश्न पर संविधान सभा का निर्णय सम्पूर्ण देश को मान्य होना चाहिए।"

आखिरकार 14 सितम्बर की शाम को बहस के समापन के बाद जब भाषा सम्बंधी संविधान का तत्कालीन भाग संविधान में शामिल हो गया तब डॉ. राजेन्द्र प्रसााद जी ने अपने भाषण में बधाई देते हुए कहा– "आज पहली बार ऐसा संविधान बना है जब हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है जो संघ के प्रशासन की भाषा होगी। अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा (हिंदी) को अपनाया है इससे हमारे सम्बन्ध घनिष्ट होंगे। हमारी परम्पराएँ और संस्कृति भले ही अलग–अलग हों किन्तु हमारे बीच में जो तत्त्व एकता बनाये हुए हैं वो भाषा ही है।''

संविधान सभा में भाषा विषय पर हुई यह बहस लगभग 278 पृष्ठों में मुद्रित हुई। सहमती हुई की संघ की भाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी किन्तु देवनागरी में लिखे जाने वाले अंकों तथा अंग्रेजी को 15 साल या उससे अधिक अवधि तक प्रयोग करते रहने के बारे में गरमागरम बहस हुई।

अंत में यह समीकरण भारी बहुमत से स्वीकार हुआ कि हिंदी के अंकों को छोड़कर संघ की राज भाषा हिंदी हो। अंकों के बारे में यह स्पष्ट था कि अन्तर्राष्ट्रीय अंकों भारतीय अंको का ही नया संस्करण है कुछ सदस्यों ने रोमन लिपि के पक्ष में प्रस्ताव रखा, किन्तु देवनागरी के पक्ष में ही अधिकांश सदस्यों ने अपनी राय दी।

राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है अगर हम भारत को राष्ट्र मानते हैं तो हिन्दी ही हमारी राष्ट्र भाषा हो सकती है। यह बात राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कही थी "किसी भी राष्ट्र को सर्वाधिक प्रचलित एवं स्वेच्छा से आत्मसात की गई भाषा को राष्ट्र भाषा कहते हैं।" हिंदी, बांग्ला, उर्दू, पंजाबी, तेलगु, तमिल, कन्नड, मलयालम इत्यादि भारत के संविधान द्व ारा राष्ट्र की मान्य भाषाएँ हैं। इन सभी भाषाओ में हिंदी का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि यह भारत की राजभाषा भी है। राज भाषा वह होती है जिसका प्रयोग किसी देश के राजकाज को चलाने के लिए किया जाता है। हिंदी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा तो है किन्तु यह सम्मान सिर्फ सैद्धांतिक रूप में प्राप्त है। वास्तविक रूप में राज भाषा को सम्मान प्राप्त करने के लिए अंग्रेजी से संघर्ष करना पड रहा है।

वाल्टर कैनिंग ने कहा था – "विदेशी भाषा का किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और शिक्षा की भाषा होना सांस्कृ तिक दासता है।"

हिंदी में वह सभी गुण विद्यमान हैं जो एक राष्ट्र भाषा में होनी चाहिए अतः हमारी सरकार का भी यह परम कर्तव्य है कि वह हिंदी का और प्रचार प्रसार करे जिससे हमारी राष्ट्र भाषा हिंदी को विश्व स्तर पर पहचान दिलाई जा सके।

अजनबी

– हर्षिता शंकर

इतिहास विभाग– प्रथम वर्ष

यूँ ही हमेशा चुप चाप रहती थी,
मन की बात ना किसी से कहती थी।
अक्सर सपनों में खो जाना, कुछ अच्छा सा लगता था।
उस सपनों की दुनिया में कुछ लोग थे,
कुछ यादें थीं, कुछ प्यारी प्यारी सी बातें थीं।
हर तकलीफ सह जाती थी,
खुद से ही सब कह जाती थी,
क्योंकि परवाह किसे है?

कुछ दिन बीते, कुछ साल गुजरे
यूँ ही यह सिलसिला चलता रहा
अपने मन को मार कर, दुनिया से हार कर,
धीरे–धीरे ये दिल भी इस हाल में ढ़लता रहा।
एक चंचल मन खामोश सा था,
क्योंकि परवाह किसे है?
मगर एक रोज कुछ आहट सी हुई,
मन को भी कुछ चाहत सी हुई,

किसी ने दुनिया का रंग दिखाया था
और संग मेरे एक अजनबी साया था
मन में जगी एक आस सी थी,
वो पल भी लगी कुछ खास सी थी।
डर तो था कहीं ये सपना तो नहीं
जो फिर एक बार आया है,
अगर ये टूट गया तो फिर घना साया है।
मैंने रूह को झकझोरा जगाया, उससे पूछा बार–बार
लगातार, ''कहीं यह सपना तो नहीं?''
लेकिन सिर्फ खामोशी सी थी फिर हल्की खुसफुसाहट हुई
कि ये कुछ अलग है कुछ नया सा है
ये एहसास हुआ कि हाँ कोई है जिसे सच में परवाह है।
उस खामोशी की उन यादों की और सभी बातों की
जो हमेशा से मन में दफन थी।

आँसू

प्रियंका ढाका
रसायन विभाग, तृतीय वर्ष

अरे आँसू! बता तेरी क्या कहानी है,
सच है तू जीवन का या सिर्फ पानी है?
कभी बहता है दुःख में,
कभी छलकता है खुशियों में,
छुपा बैठा है कहाँ तू नैनों की गलियों में,
सागर जैसी आँखों में छिपा मोती सा है,
कभी दिल में जगी ज्योति सा है,
क्या नैनों से तेरी प्रीत पुरानी है,
अरे आँसू !बता तेरी क्या कहानी है?

दुःख का बांध भी है, सुखों की डोरी भी
तू इस ओर है, तू उस ओर भी
आँसू ना हो जब तक, हर दुःख लगे झूठ
हर सुख लगे फीका
तेरे सम्मिलित बनाये सुख–दुःख को सीखा
ना तेरा बचपन, ना बुढ़ापा, ना ही जवानी है,
अरे आँसू! बता तेरी क्या कहानी है?
चोट लगे या दर्द हो, बिन कहे तू अपना काम करे,
आँखों से निकलकर तू गालों की सुंदरता को बदनाम करे
रूठे साथियों को मिलाना तेरा काम है,
आँसू रे!तेरा हर नयन में बना मकान है,
दुखी चेहरा तेरे आने की निशानी है
अरे आँसू ! बता तेरी क्या कहानी है?

कभी बच्चे की किलकारी,
कभी बुढ़ापे की मजबूरी है तू,
हारे हुए इंसान की नाकामयाबी,
विदा होती बेटी की विडम्बना का साया है तू,
दुनिया में तेरी पहचान पुरानी है,
अरे आँसू !बता तेरी क्या कहानी है?

खुशी कैसे मिलेगी?

सौरभ कुमार आर्य
भौतिकी विभाग, तृतीय वर्ष

संघर्षों का दौर चरम पर,
शांति टिकती है पल भर,
शस्त्र अधूरे हैं,निकट अँधेरा है,
जीत की किरण का सूर्य से प्रसार नहीं,
जय हो या पराजय किन्तु जीवन का सार नहीं,
हताश पड़े हैं तट पर किसी तीर के,
मुकुट माथे पर अधरों पे हँसी कैसे खिलेगी?
खुशी कैसे मिलेगी?

चंद्रमा भी ओट छिपा,
सूर्य भक्षक बन बैठा है,
नक्षत्र किनारे है, धरती पुकारे है
एक नई धुरी की प्रतीक्षा निरन्तर है,
होने या न होने में विशाल अंतर है,

सितारे व्यापार करते रौशनी का नभ में,
घोर रहस्यों की गुत्थी कैसे खुलेगी?
खुशी कैसे मिलेगी?

हर तरफ हाहाकार के मंजर,
खुद को कहते हैं सब सिकंदर,
रिश्ते बेबस हैं,
किसको फुरसत है?
चमक संसार की सबको सुख देती,
चाहे इज्जत सरेआम रोती,
अपने देखकर अपनों को पल में बदलने लगे,
जीवन संतोष है ये शिक्षा कैसे मिलेगी?
खुशी कैसे मिलेगी?

अभागा कौन है ?

सौरभ कुमार आर्य
भौतिकी विभाग, तृतीय वर्ष

इस शरद में जेठ–सा झुलसता यह कौन है?
अभागा कौन है ?
श्रृंगार शीश से चरण तक,
जन्म लेता फिर से स्वर्ण मृग,
इस चमकते जीवन के भोग को त्यागता कौन है?

अभागा कौन है?
प्रकृति का वरदान अनोखा,
हर युग में मिलता हर बार,
छोड़ सुधा हलाहल को ग्रहण करता कौन है?
अभागा कौन है?
रिश्ते यहाँ पर हैं अनेक,
मेले में साथी हर एक,
इन कच्चे धागों को मन से सुलझाता कौन है?
अभागा कौन है?

नई चेतना है चरम पर,
गूँज उठा दिशाओं में विजय स्वर,
इन उजालों के जश्न में वो अँधेरा कौन है?
अभागा कौन है?

उदासी-1

ओम जी द्विवेदी
गणित विभाग

उदासी का घनघोर साया मेरे संग–संग चलता है।
आँखों से गिरने वाला हर एक आँसू भी जलता है।।

दौर जवानी का है यारों एक गलती मैंने कर डाली।
आँखों ने रोज उसी चेहरे को देखने की आदत पाली।।

फिर नयनों ने जाना नयनों से प्रेम पराग कैसे बहता है।
गर्वित शीश लिए हिमगिरि भी अश्रु धार लिए ढ़हता है।।

चाँदनी रात में साकी तब सारे तारे बन जाते हैं।
इतना जाम पिलाते हैं दो चाँद नज़र फिर आते हैं।।

इस आर्त अवस्था को देखकर मन अशांत हो जाता है।
एक चाँद को अपनी बांहों के आलिंगन में पाता है।।

उदासी-2

आँखों में सागर सी गहराई अधरों पर एक मंद मुस्कान।
लगता इस एक दृश्य पर रुकी हुई उस चातक की
नन्हीं जान।।
रिमझिम बारिश की फुहार मन को चंचल करती बयार।
मानो बसंत ऋतु पहना रही उन दोनों को प्रेम हार।।

मेरी खातिर ही लगता उस पल स्वर्ग धरा पर आया हो।
मीठी–मीठी धुन वाला कोई गान प्रकृति ने गाया हो।।

तैयार हो गयी मैं भी

चेतना
हिंदी विभाग

हो गयी तैयार मैं भी
पता नहीं अच्छी हूँ या बुरी, बस
बनकर तैयार हूँ एक वस्तु मैं भी।

नहीं देखूँगी उन गलियों को,
नहीं खेलूँगी उस गुड़िया से
जिनसे हुई तैयार मैं भी।

जो सिखाया वो करूँगी,
जो बुलवाया वो बोलूँगी,
दिख रही हूँ सुन्दर, कोमल तैयार मैं भी।

हो गयी मैं भी उन सबकी तरह
जो दिख रही हैं कमज़ोर मेरी तरह,
जीवन में लड़ पाऊँगी अगर
आगे बढ़ पाऊँगी फिर तो, नहीं तो
औरों की तरह दब कर मर जाऊँगी मैं भी।

परखा जायेगा मुझे भी,
अच्छी हुई तो रखा जायेगा मुझे भी,
वरना फेंका और कुचला जायेगा,
जीवन में अगर आगे बढ़ गयी तो
लडूँगी और लड़कर सिर्फ इतना कहूँगी –

हूँ नहीं मैं भी वस्तु कोई
मेरा अपना उदय है
है मेरा अपना अस्त कोई
तुम जो मुझे कहोगे वस्तु कोई
न अब मैं चुप रहूंगी
करूंगी इनकार मैं भी
लो हो गयी तैयार मैं भी।।

देखा है जब से तुमको

रंजना
हिंदी विभाग, तृतीय वर्ष

देखा है जब से तुमको
मेरी नादान इन आँखों ने
तुम्हीं तुम हो तब से
हर लम्हा हर बातों में।।

मेरी रूह हो तुम
मेरा सुकून हो तुम
कभी न खत्म हो जो
वही जुनून हो तुम।।

मैं दीया तो तुम
उसकी ही बाती हो
जिंदगी के हर मोड़ पर
तुम ही मेरे साथी हो।।

मेरी आज हो तुम
मेरी प्यास हो तुम
मेरे लफ्ज़ हो तुम
मेरे अल्फाज़ हो तुम।।

मैं दीन तो मेरा ईमान हो तुम
मैं ज़मीन तो मेरा आसमान हो तुम।।

मैंने एक इंसान बनाया

–तपेश गौतम
भौतिकी विभाग, तृतीय वर्ष

मैंने एक इंसान बनाया,
न हिन्दू न मुसलमान बनाया।
बस मैंने एक इंसान बनाया।।

यह दुनिया मेरा सुन्दर सपना।
हर मज़हबी, इंसान है मेरा अपना।।

बन्दे सोच तेरी खराब थी।
वरना रचना तो मेरी लाजवाब थी।।

मेरी बनायी कुरान संहिता।
मेरी सुन्दर सोच है गीता।।

दो अलग जुबान पर एक मायना।
जैसे बिम्ब–प्रतिबिम्ब और बीच आईना।।

पर तूने इनको लड़वाया।
मेरी स्याही पर खून लगाया।।

इस लड़ाई में तू मुझे घसीट लाया।
मेरे नाम पर तूने मेरे बच्चों का लहू बहाया।।

मैं देखता रहा तूने मेरी
मिट्टी बाँटी, मेरा गगन, जल, अग्नि, सब बाँट दिया।
हैरान तो तब हुआ जब तूने मुझे ही बाँट दिया।।

अरे! चुप रहा राम–रहीम अपने दो नाम जानकर।
पर तू दुनिया को बनाता रहा दो शख्सियत मानकर।।

मेरे सुन्दर संसार को तूने अपना बना लिया।
और मुझे एक पुतले में कैद कर मूर्ति बना दिया।।

मैंने तेरे लिए सुन्दर सा घर बनाया।
पर तू मुझे मंदिर–मस्जिद में कैद कर आया।।

मेरे जानवरों का भी बंटवारा हो गया।
जब गाय हिन्दू, बकरा मुसलमान हो गया।।

अब मैं तो एक नकारा इंसान हो गया।
पर एक ढोंगी साधु भगवान हो गया।।

कर्म से बड़ा, बन्दे तेरा नाम हो गया।
जब विक्रम हिन्दू और अकरम मुसलमान हो गया।।

अब याद आता है मैंने एक इंसान बनाया।
न हिन्दू न मुसलमान बनाया।।

दहकता तेजाब

–वेता गुप्ता
अंग्रेजी विभाग, तृतीय वर्ष

तेजाब बनाने की फैक्ट्री में निश्चय ही यह बात अच्छी लगती होगी कि जितने हादसे इसके बनने की प्रक्रिया में नहीं होते उतने इसके बाजार में आने के बाद हो जाते हैं। इसी प्रकार आतंकवाद नाम का एक और तेजाब प्रथम दुनिया विशेषकर अमेरिकी नीतियों द्वारा तैयार किया जाता है। जिसकी जलन आज पूरे संसार को सहनी पड़ती है और आज के समय में यह तेजाब सीरिया के दक्षिणी भाग में फैला हुआ है। जहां 30,000 आईएसआईएस 4 मिलियन लोगों पर दहशत बरसा रहे हैं। मगर शायद इसके निर्माणकर्ता इस बात से बेखबर है कि यह जिहाद नामक आतंकवाद वह उड़नखटोला है जो उन्हें स्वर्ग के द्वार तक ले जाएगा। जिसका रखवाला क्रूर है, बेरहम है। जिसे 4 वर्ष के आयलान कुर्दी पर दया नहीं आई, जब वह टर्की के छोर पर औंधे मुंह जिंदगी व मृत्यु के बीच संघर्ष कर रहा था। 2 सितंबर 2015 को मिली उसकी तस्वीरें आज भी मानवता, प्रेम जैसे शब्दों को चीर रही है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आयलान की इन तस्वीरों ने संसार के अखबारों में सुर्खियाँ तो खूब बटोरी पर इंसाफ नहीं बटोर पाई।

यह इस बात का आगाज़ है कि भले ही आज पश्चिमी देश चैन की नींद सो रहे हैं पर ज्यादा दिनों तक नहीं सो पाएंगे क्योंकि अमेरिका के वाशिंगटन में हुआ हादसा इस बात का प्रमाण है, कि जिस अमेरिका ने अपनी ताकत को बनाए रखने के लिए इस्लामिक देशों के हाथों में बंदूके थमा दी थी, वही बंदूके आज उन्हीं के खिलाफ इस्तेमाल हो रही हैं। यह इसलिए क्योंकि ये बंदूकें पकड़ने वाले वही लोग हैं जो अमेरिका द्वारा इस्तेमाल होने के बाद निरस्त कर दिए गए इस प्रकार यह बात उभरकर आती है कि अमेरिका जैसे विकसित देशों का आतंकवाद के निर्माण की प्रक्रिया से कहीं तो संबंध है, और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इन देशों ने इस्लामिक देशों में पड़ी फूटों को अपने फायदे के लिए इस्तेमाल किया है। आज इंटरनेट जैसी तकनीकों के होते हुए भी दुनिया बिखर रही है, रिश्ते टूट रहे हैं तथा अमेरिका जैसे सुरक्षित कहे जाने वाले देशों में भी 9/11 जैसे हमले हो रहे हैं।

मगर आज इतने वर्षों बाद भी पूर्वी देशों द्वारा इस बात पर कोई ऐतराज़ नहीं जताया जाता है कि यहां के विद्यार्थी अपने स्कूली पाठ्यक्रम में मुंबई के बम धमाके, पाकिस्तान के पेशावर के आर्मी स्कूल पर हमले के बारे में नहीं पढ़ते बल्कि एंड्यूरिंग फ्रीडम, डेजर्ट स्ट्रोम ऑपरेशन व इराकी फ्रीडम के बारे में पढ़ते हैं, जो कि अमेरिकी गतिविधियों से प्रेरित है। इसका सबसे बड़ा कारण अमेरिकी संस्कृति का बाकी संस्कृति पर हावी होना है। मगर तीसरी दुनिया के देश इस बात को गंभीरता से लेने में असमर्थ हैं, और इस प्रकार इन देशों के बीच शत्रुता बढ़ती जा रही है और उसका परिणाम होता है 'आतंकवाद का जन्म'।

अंत में यहाँ एक और तथ्य उभरकर आता है कि जिस प्रकार तेज़ाब की जलन से बचने के लिए इसके निर्माणकर्ता कोई रक्षा कवच इस्तेमाल करते होंगे उसी प्रकार एक और सुरक्षा कवच मानवता के रखवालों को बनाना चाहिए, जो कि इन आतंक फैलाने वालों के हाथ ना लगे तथा विश्व में उसके साथ शांति स्थापित की जाए।

आ अब लौट चलें...

सौरभ मौर्य
हिंदी विभाग, तृतीय वर्ष

अभी–अभी गांव से लौटा हूँ। बहुत दिनों के बाद गया था। गांव में बहुत कुछ बदल गया है। सड़के पक्की हो गई हैं, नालियां भी बन गई हैं, झोपड़ियों की जगह पक्के मकानों ने ले ली है। ऐसा लगता है मानो अच्छे दिन आ गए हों।

गांवों के विकास को देख कर मन खुश हो गया। लेकिन एक बात जो ध्यान में आई वह यह कि गांवों में पुरूषों की संख्या बहुत कम दिखाई दे रही थी। ज्यादातर महिलाएं, बच्चे और बूढ़े हीं थे वहाँ वजह यह कि पुरुष और युवा बच्चे कमाने के लिए शहर गए हैं। यह मेरे लिए हैरानी की बात थी की गांवों के विकास के बावजूद लोग शहर पलायन कर रहे हैं। हो न हो अभी शायद अच्छे दिन आये नहीं हैं।

जिस समय गांव पंहुचा करीब एक बज रहे होंगे। गांव में अजीब सन्नाटा था। उस सन्नाटे को मैं अपने जूतों की आवाज़ से चीरता चला जा रहा था। घरों के बाहर लेटे हुए लोग मुझे ऐसे देख रहे थे मानों उनकी आँखें पहचानने से इनकार कर रही हो। तभी एक आवाज आई – 'मंगल बाऊ के लायिका हो का बेटा'। मैंने जवाब दिया – 'हाँ काका' और आगे बढ़ गया। आगे चार घर बाद वाला घर मेरा था।

खुशी का ठिकाना यह कि मैं घर पहुँचने वाला हूँ। घर के आगे कोई नहीं दिखाई दे रहा था । मैं आँगन में पहुँचा

तो दादी चारपाई पर सोई थीं आहट से उन्होंने आँखें खोल दीं। मैंने उनके पैर छुए तो उन्होंने आशीर्वाद के साथ–साथ प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

'खुश रहा बेटा अउर बताओ हाल–चाल' – दादी ने कहा। 'अच्छा है दादी अपना बताइये' – मैंने उत्तर देते हुए कहा। 'रजत नाहीं आइन?' दादी ने भारी मन से कहा। 'नहीं वो तो लखनऊ में ही रुक गए'– मैंने उत्तर दिया। 'बड़ा दिन हो गए देखे नाहीं। बड़ी इच्छा थी की देखि ली। हाँ भाई! काहे आवें? यहाँ चौबीस घंटे बिजली थोड़े ही न रहेला, यहाँ किससे मिले आइहैं ..... 'कहते कहते दादी की आवाज भारी हो गई और आँखें भी नम हो आयी थीं। मैं चुपचाप

मूक खड़ा रहा।

यह सिर्फ संजय के घर का दृश्य नहीं है बल्कि लगभग हर उस घर की कहानी है जिस घर में ऐसे दादा – दादी रहते हों और उनका लड़का शहर में नौकरी करता हो । यह बड़ा भयावह दृश्य है । जो लोग शहर में नौकरी करते हैं उनके बेटे–बेटियां जब कभी गांव अपने दादा दादी के पास आते हैं तो उन्हें उनकी भाषा, गांव की मिट्टी , बिजली की कमी इत्यादि उनकी असुविधा का कारण बन जाती है और अनायास ही मुँह से निकलता है 'I can't tolerate'। अब उन्हें कौन समझाए कि जिन चीजों को वे tolerate नहीं कर सकते उन्हीं चीजों में रह कर , दिन रात एक कर उन दादा दादी ने अपना पेट काट कर अपने बेटे को इस काबिल बनाया है कि वह शहर में नौकरी कर सके। एक और बात गांवों की जो हवा और मिट्टी उन्हें बर्दास्त नहीं होती वे शहरों की हवा और कंक्रीट से कहीं ज्यादा स्वच्छ हैं ।

खैर छोड़िए ऐसा नहीं है कि सिर्फ गांवों से गए लोगों ने गांवों को भुलाया है बल्कि गांवों की मिट्टी और फिजाओं ने भी अपनों से दूर गए लोगों को भुलाना शुरू कर दिया है । फिर भी उन तरसती आँखों की खातिर कुछ पल के लिए ही सही आ अब लौट चलें ।

मैत्रेयी पुष्पा से वागीशा और अविनाश की बातचीत

प्रश्न– लेखन में आपका रुझान कैसे हुआ ?

उत्तर – मुझे बचपन से पढ़ना बहुत अच्छा लगता था, कविता पढ़ना मुझे बहुत पसंद था मैं अपने स्कूल की सारी कविताएँ याद कर लेती थी एक कविता थी – ''आओ हम सब झूला झूलें, प्रेम बढ़ाकर नभ को छूलें।'' मुझे यह कविता इतनी अच्छी लगती थी, इसलिए मैंने इसे याद कर लिया था। तीसरी कक्षा की बच्ची इतना क्या जानती ? तो यहाँ से सफर शुरू हुआ, फिर आगे सारे सब्जेक्ट पढ़ने लगी और हिंदी से ज्यादा जुड़ती गयी। जब मैं बड़ी कक्षाओं में आयी, और लेखकों कवियों को पढ़ा उस समय साप्ताहिक हिंदुस्तान और 'धर्मयुग' आता था। उनमें जो कविताएँ होती थी मैं उन्हें लिख लेती थीं, फिर उन्हें पढ़ती थी। पता नहीं था कि कभी लिखूँगी। जब मैं 11 वीं में थी तो मेरे पास एक लड़के की चिट्ठी आयी जो कि कविता में थी और वह कविता मेरे लिए बहुत ऊँचाइयों वाली थी। पहले जब लड़की को एक लड़के की चिट्ठी आती थी तब वह सहम जाती थी, मेरे साथ भी ऐसा थोड़ी देर के लिए हुआ कि मैं भी सहम गयी क्योंकि पहली बार आयी है, क्या करूँ ? फिर एक घंटे में मैं उसे कई बार पढ़ गयी। और उसकी मेरा लिखने का ये सफर शुरू हुआ, मैंने कलम पकड़ी। लोग कहते हैं कि प्रेम – पत्र से लोग बदनाम हो जाते हैं, पर ये आप पर निर्भर करता है। एक प्रेम–पत्र ने ही मुझे लेखिका बना दिया। फिर नीरज, मैथिलि शरण गुप्त जैसे लेखकों को पढ़कर मैंने लिखना शुरू किया। वैसे तो मैंने उस लड़के को कभी जवाब नहीं लौटाया। मैं अपनी कॉपी के पीछे कुछ कविताएँ लिख लेती थी तो वो लड़का टीचर के पास से ले लेता था और फिर मेरी कविता पर एक और कविता लिख देता था। ऐसे करके बात तो नहीं हुई लेकिन मैंने अपनी कविता में वृद्धि की। आज के लिए वह लड़का भी एक उदाहरण है कि लड़के – लड़कियों को एक अच्छी विद्या और रचनात्मक सहयोग दे सकते हैं। वहाँ से मेरा सफर शुरू हुआ। मैं गद्य भी पढ़ती थी लेकिन मुझे उससे ज्यादा लगाव नहीं था, फिर मैंने कॉलेज पत्रिका में लिखने की कोशिश की और झाँसी से निकलने वाले 'जागरण अखबार' में भी मैंने लिखा।

एक बात और मेरे टीचर कहते थे, यह जो लिखती है वह दूसरों से अलग लिखती है। जब मैं बी. ए., एम. ए. में आयी तो उन्होंने कहा कि देखना एक दिन यह लड़की राइटर बनेगी। मैंने तो हँसी की बात समझी। इस तरह मैं लेखन की ओर बढ़ी। मुझे पता नहीं था, मैं दिल्ली आ जाऊंगी या कहाँ रहूंगी पर जहां भी रहती लिखती जरूर। फिर मेरी शादी हो गई, सपना था पीएच. डी. करूंगी लेकिन कुछ नहीं हो पाया, सिर्फ बच्चे ही हुए। मैंने 25 साल कुछ नहीं लिखा। जैसे ही मैं कुछ पढ़ती थी, वैसे ही मुझे बेचैनी होने लगती थी कि मैं भी कुछ लिखूंगी लेकिन परिस्थितियाँ ऐसी नहीं थी, क्योंकि मेरे सामने तीन बच्चियाँ थी, उनको पढ़ाना–लिखाना, उनको पैरों पर खड़ा करना बहुत जरूरी था। यह समाज हमारा जिनकी लड़कियाँ होती हैं, उनकी मुसीबत कर देता है, माना यह जमाना वह जमाना नहीं है। लेकिन लड़कियों के लिए कुछ नहीं बदला मेरी तीनों बेटियाँ आज डॉक्टर हैं। तब हमें ताने दिए जाते थे, और अब रेप होता

है। तब लड़की होने के लिए हमें ऐसे ताने दिए जाते थे, जैसे हमने अपराध किया है। बहुत चैलेंज़िग था मेरे लिए इस समाज में जीन बच्चियों की परवरिश करना। लेकिन मैंने भी ठान ली थी कि अपनी लड़कियों के व्यक्तित्त्व को, उनके उज्जवल भविष्य को सृजित कर ही मैं अपने बारे में, अपनी रूचि के बारे में लेखनी द्वारा कुछ रचने का सोचूँगी। मेरी बड़ी बेटी ने कहा कि तुमने बहुत किया हमारे लिए अब कुछ अपना तो सोचो, यह सब कुछ मैंने ''गुड़िया भीतर गुड़िया'' में लिखा है। मेरे पति नहीं चाहते थे कि मैं बाहर निकलूँ और लिखूँ। हालाँकि वे बहुत मॉडर्न थे। घरवालों का विरोध करना और उनसे विद्रोह करना बहुत मुश्किल होता है, बाहर वालों से तो एक बार आप कर सकते हैं। लेकिन मेरी बच्चियों ने मेरा साथ दिया, मैंने कहा मैं कैसे लिखूँ तो उन्होंने कहा जब हम पढ़ते थे, तो तुम हमारे नाम से कोई छोटी सी कविता, कोई कहानी लिख देती थी अब अपने नाम से लिखो। मैंने कहा मेरा नाम क्या है ? मैं तो मिसेस शर्मा हूँ। मुझे कोई मेरा नाम लेकर नहीं पुकारता, बच्चों ने मुझे समझाया तब मैंने पहली कहानी लिखी वह नहीं छपी। छपने का संकट तो होता ही है, सब जगह मेरा तेरा, सब जगह क्या लोगे–क्या दोगे। मेरा तो जानने वाला भी कोई नहीं था। घर मे भी बंदिशें थी, ऐसे में कहाँ तक जाऊँ। रास्ते देखे नहीं थे, वो पहली दो कहानियां नहीं छपी पर तीसरी साप्ताहिक में छप गई। मैं नहीं समझ रही थी कि मैं कोई अच्छी कहानी लिख रही हूँ, जो मेरे पास अनुभव थे मैं तो वही लिख रही थी। लिखने का तरीका भी था लेकिन नहीं पता था मैं कैसा लिख रही हूँ।

कोई बताने वाला नहीं था कि एक लंबी कहानी जो छपी नहीं थी जिसे मैंने अपने पास रखा हुआ था। उसमें कुछ बात थी। उसी पर मैंने अपना अन्यथा इदन्नमम लिखा इदन्नम् जिसने मुझे पूरे देश में पहचान दिलाई और अभी तो वह सीरियल के रूप में प्रसारित हो रहा है। मैंने मेहनत बहुत की, और इस तरह मेरा लेखन शुरू हुआ और मैं उसमें स्थापित होती चली गई।

प्रश्न– आपके लिए साहित्य की क्या परिभाषा है?

उत्तर – मेरे लिए साहित्य की कोई शास्त्रीय परिभाषा नहीं है। साहित्य वह है जो आम जनता से जुड़ा हुआ हो, क्योंकि उन्हीं के तो सुख–दुख होते हैं। मैं उस साहित्य से थोड़ा बच कर चलती हूँ जो हमें परिभाषा में दिया गया है। मैं उसे साहित्य कह सकती हूँ जो सब के साथ चले। सह हित से ही तो साहित्य बना है।

प्रश्न– आपको एकमात्र महिला लेखिका कहा जाता है, जिसने हिंदी साहित्य में ग्रामीण परिवेश और उनकी दिक्कतों और संघर्षों को मुख्य रूप से उभारा है। ग्रामीण जीवन के प्रति आपके लगाव पर आप क्या कहना चाहेंगी?

उत्तर – उसे हम रुचि नहीं कह सकते। वह मेरी आदत में था, क्योंकि मैं गाँव में ही जन्मी हूँ। वहीं पली बढ़ी हूँ, वहीं रहकर मैंने अपनी शिक्षा पूरी की है इसलिए मैंने गाँव पर लिखा, क्योंकि 20 साल तक किसी को जो संस्कार मिलते हैं वह फिर मिटते नहीं हैं, जो उसके बाद मिलते हैं उनको वह अपनाता तो है लेकिन अंदर से जो प्रतिक्रिया होती है वह उन्हीं 20 सालों पर आधारित होती है। हमें पुरानी बातें याद आती हैं, क्योंकि वे हमारी जड़ में हैं हमारी जीवन में हमें उसकी आदत पड़ गई हैं, खाने की, पहनने की, चलने की, तीज त्योहारों की, ये सब चीजें हमें हमेशा याद आती रहती हैं। ये सब छूटते नहीं हैं। हम ऊपर से कितने भी खोल पहन लें पर अंदर से तो हम वही हैं ना। इसलिए मैं कितनी भी दिल्ली में थी, मैं पुरानी बातें नहीं भूल सकती। मेरे अंदर हमेशा गाँव रहा है और आज भी है। शरीर से यहाँ हूँ, मन से गांव में। जब मैंने कलम उठाई, मैंने वहाँ की कहानियाँ लिखनी शुरू की और मुझे यह भी लगा कि स्त्री की कलम से गाँव की स्त्री आयी ही नहीं है। उसने क्या गुनाह किया है, जो आपने उस पर कलम नहीं चलाई। आप शहरी स्त्रियों को रिपीट क्यों कर रहे हैं ? लेखक के काम में यायावरी भी होती है। हमारी कलम किनसे जुड़ती है ? उपेक्षित और वंचितों से जिनको नागरिक तो कहते हैं लेकिन अधिकार नहीं दिए जाते, तो कलम यहाँ जुड़नी चाहिए। यहाँ शहरों की चमचमाहट में कितना करेंगे। यह जो दिख रहा है, ये ऊपरी माहौल है अंदरूनी नहीं है, अंदर से तो हम सब ग्रामीण ही हैं।

प्रश्न – आप स्त्री–विमर्श के प्रति बहुत संवेदनशील और जागरूक रही हैं। आपकी बहुत सी कृतियाँ स्त्रियों पर आधारित हैं आपका नाम 2014 में दिल्ली कमीशन फॉर वूमेन के लिए भी प्रस्तावित किया गया था। भारतीय संदर्भ में स्त्रियों की दशा को आपके विचार और साहित्य कहाँ तक सुधारने में सक्षम रहे हैं इस

पर आपके विचार।

उत्तर – जब स्त्री पुरुष की बात करेंगे तो जो हम चित्रण करते हैं उसमें उपेक्षित कौन है, वंचित कौन है, दोयम दर्जे का कौन है ? जब हम वर्णन करते जाते हैं तो वह अपने आप निकल कर आता है। तो मुझसे कहा गया कि मैं स्त्री विमर्श कर रही हूँ। मैं स्त्री विमर्श बिल्कुल नहीं जानती थी। मैंने तो वे कहानियाँ लिखीं जहाँ भेदभाव है, स्त्री के प्रति जहाँ हमारा समाज निरंकुश हो उठता है, जहाँ स्त्री के साथ अन्याय होता है। जब मैं उसे उभारती हूँ तो लगता है कि मैं स्त्री विमर्श कर रही हूँ। मैंने तो बस चोट की है कि क्यों ऐसा हो रहा है, कैसे यह सुधरेगा ? लोग कहते हैं हम स्त्रियों को बहुत सम्मान देते हैं, कई स्त्रियाँ भी कहती हैं हमें सम्मान दो। मुझे 'सम्मान दो', पर ऐतराज है। क्यों नहीं कहा जाता कि हमें समानता दो। पद, सम्मान तो बड़ी बनावटी सी चीज है एक दिन सम्मान दे देंगे खुश हो जाओ समानता रोज–रोज देनी पड़ेगी जो बहुत मुश्किल है। मेरी रचनाओं में मैंने यही लिखा कि समानता दो। लोग मुझसे कहते हैं कि मैं स्त्री से पुरुष को कमजोर दिखाती हूँ, स्त्री को शक्तिशाली कर देती हूँ ऐसा नहीं है। मैं दोनों को बराबर रखती हूँ। अभी तक लोगों को आदत है औरत को कमजोर देखने की लेकिन मैं दोनों को बराबर खड़ा करती हूँ तो उन लोगों को पुरूष कमजोर लगता है क्योंकि देखने की आदत नहीं है। मैंने बराबर लाने की कोशिश की तो लोगों ने कहा कि मैं स्त्री विमर्श कर रही हूँ। मैंने सिर्फ स्त्रियों को पुरुष के बराबर में खड़ा किया और उन्हें मैंने वह पद और कद दिए जो पुरुष को दिए जाते हैं। मैंने एक मनुष्य होने के नाते, एक नागरिक होने के नाते स्त्री को उसका हक दिया। वह प्रधान भी बनेगी, वह एम पी भी बनेगी, वह एम. एल. ए. भी बनेगी, वह मिनिस्टर भी बनेगी। उस को आगे आना चाहिए वह पढ़ेगी लिखेगी, बच्चे अपनी मर्जी से पैदा करेगी, शादी करे या ना करे उनकी मर्जी है। लड़की की उम्र होने पर लोग कहते हैं 'इसकी शादी नहीं हुई, लड़के की उम्र होने पर कहेंगे शादी की नहीं' हमारे यहाँ वाक्य औरत को नीचा दिखाने के लिए बने हैं। बांझ पुरुष होता है क्या? किसी पुरुष को विदुर कहा जाता है, बोलने में नहीं आता वह बस लिखावट में आता है। जितनी गालियाँ बनी है, वह सारी स्त्रियों को लेकर बनी है। यह गालियाँ बंद होनी चाहिए इसे विमर्श कहलो या कुछ भी कह लो यह हमारा मानना है। तो साहित्य में यह सब लिखा जा रहा है तो लड़कियाँ पढ़ कर समझ रही हैं चाहे जितना भी अपनी आजीविका के लिए पढ़ लो वह तकनीकी चीजें हैं। साहित्य, मनुष्यगत विषय है उसे पढ़कर ही तुम मनुष्य बनते हो, इसलिए साहित्य बहुत जरूरी है, हर एक को पढ़ना चाहिए। न्याय–अन्याय की बातें तो साहित्य ही बताता है। कोर्ट फैसले देता है लेकिन साहित्य उसका विश्लेषण करता है फैसले नहीं देता।

प्रश्न– 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में आपने नई परंपराओं की मांग की है, जो स्त्री को सशक्त कर एक स्वतंत्र जीवन दे सके। ऐसे में विवाह जो कि वर्तमान में पुरुष प्रधान है। उस पर आपकी क्या समझ बनती है, क्या वह एक स्त्री के लिए बंधन है या एक खुशहाल जीवन ?

उत्तर – हमारे समाज में जो विवाह के नियम हैं उसमें तो स्त्री खुशहाल कभी नहीं रह सकती है। जो शादी में वचन लिए जाते हैं, उनमें कुछ समानता है लेकिन उसे कोई याद नहीं रखता। विवाह में जो बहू के लिए नियम बनाए गए हैं, वह स्त्री को वचनयुक्त करते हैं उसे पराधीन बनाते हैं, अगर बहू परिवार के हिसाब से बच्चों को जन्म नहीं देती, तो अच्छी नहीं है, कहते हैं विवाह के लायक ही नहीं थी। उसका विवाह हो गया। विवाह में औरत की इच्छा कितनी है फर्क किसे पड़ता है। बहुत ही गृहणियाँ बहुत खुश दिखेंगी, लेकिन वो अंदर मे क्या सोच रही हैं उसके बारे में कोई नहीं जानता। वे सेवा करती हैं, व्रत, उपवास सब करती हैं लेकिन क्या वह मन में यही सोच रही हैं? और जो करती हैं वह सोचती नहीं है बस करती जाती हैं। औरत जो सोचती है वह करती नहीं क्योंकि करने नहीं दिया जाता। विवाह एक सामाजिक जिम्मेदारी है। वह मन की इच्छा नहीं है, प्रेम मन की इच्छा है प्रेम हमारा अपना है। विवाह करके हम दूसरों में बेंट जाते हैं। इज्जत और आबरु में बंधना होता है, वह बंधन ही तो है। विवाह एक सामाजिक जिम्मेदारी है इसलिए एक सामाजिक बंधन भी है।

प्रश्न– आपकी कृतियों के शीर्षक परंपरा से परे होते हैं। जैसे – 'अलमा कबूतरी,' 'गुड़िया भीतर गुड़िया' आदि। इसकी प्रेरणा आपको कहाँ से मिलती है, और इसके पीछे आपका क्या उद्देश्य होता है ?

उत्तर – जब मैं ही अलग हूँ, तो शीर्षक भी अलग ही होंगे। जैसी कृति होती है वैसा ही शीर्षक भी होता है। जैसे

'गुड़िया भीतर गुड़िया' या 'अलमा कबूतरी'। 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में वही बात है कि जो मैं ऊपर से लगती थी सीधी–साधी जब मैंने कलम उठाई तो वह भ्रान्तियाँ सारी टूट गईं। स्त्री दिखती है गुड़िया जैसी उसके अंदर एक और गुड़िया होती है। जो सोचती है, वह चेतना की गुड़िया है। 'अलमा कबूतरी' जिस क्रिमिनल ट्राइब पर है, जब मैं उनके बीच रह रही थी तो उस डेरे में एक लड़की आयी। वह बहुत खूबसूरत थी, दो बच्चे वहां पर पढ़ रहे थे, मैंने पूछा कि ये बच्चे स्कूल क्यों नहीं जाते उसने मेरी तरफ देखा और थोड़ी सी तसल्ली उसके चेहरे पर आयी उसने कहा कि आपके भाई बंधु, आपकी भाभियां, आपकी बहनें, आपके गांव के बच्चे हमारे बच्चों पर कुत्ते छोड़ देते हैं और वह कुत्ते चीड़ खाते हैं हमारे बच्चों को। स्कूल हमारे बच्चों के लिए नहीं बना है। फिर मैंने उससे पूछा तुम्हारा नाम क्या है? उसने कहा 'अलमा'। मैं नहीं जानती थी कि अलमा का मतलब क्या होता है, मैंने पूछा उससे की अलमा का मतलब क्या होता है? उसने तिरछी नजर से देखा, हँसी और कहा इतनी पढ़ी लिखी हो अलमा का मतलब भी नहीं जानती। उस ने कहा अलमा का मतलब होता है, जहां आत्मा का निर्माण होता है। मैंने पूछा किसने रखा तुम्हारा नाम? उसने कहा हमारे पापा ने रखा, वह मास्टर थे और उन्हें इन लोगों ने पुलिस एनकाउंटर में डाकू दिखा कर मार डाला। मैंने सोच लिया, उसका संघर्ष सुनने के बाद, कि तेरे ही नाम पर मेरा उपन्यास होगा।

प्रश्न – वर्तमान साहित्य में आप क्या बदलाव देखना या लाना अनिवार्य मानती हैं?

उत्तर – मैं सिर्फ ऊपरी बदलाव नहीं चाहती। मैं मानती हूँ कि हमें अपने मन के हिसाब से चलना चाहिए। पर आप जो साहित्य रच रहे हैं उसमें उपेक्षित लोगों के लिए क्या है? उस अलमा के लिए क्या है जो मुझसे सवाल करती है? जो हमारे यहाँ इतने कोने अंतरों में लोग पड़े हैं उनके लिए आपने क्या लिखा है? चार किताबें पढ़ कर लिखने में मैं विश्वास नहीं रखती। मैं चाहती हूँ कि साहित्य में बदलाव अनुभवों के जरिए आए क्योंकि अनुभव से ही विचार बनते हैं, किसी विचार से अनुभव नहीं होते अनुभव से विचार होता है। जितने भी लोगों ने विचार बनाए हैं उन्होंने वह अनुभव किया है।

प्रश्न – आपकी आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' में आपने पुरुष के वर्चस्व और उसके स्त्री विरोधी विषय के बारे में लिखा है। स्त्री के विकास के संदर्भ में आपके हिसाब से पुरुष की क्या स्थिति बनती है या क्या भूमिका होती है?

उत्तर – अगर पुरुष चाहे तो वह बहुत सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। पर कोई इसकी शुरुआत करे भी तो बाकी लोग उसे कमजोर सिद्ध करने में लग जाते हैं। वह कमा कर लाती है तो अच्छा लगता है, पर जब वह बड़ा ओहदा प्राप्त कर लेती है, तो पुरुष छोटे पर रह जाए तो दिक्कत है। मैंने यहां बहुत सी पढ़ी लिखी स्त्रियों से बात की है, जो मुझे बताती है कि इतना पढ़ने लिखने के बाद, कमाने के बाद घर में क्या स्थिति बनती है।

प्रश्न – आपने बहुत सी प्रेम कविताएँ लिखी हैं, इस विषय को पुरुष लेखक अपनी जागीर समझते हैं। ऐसे में आपको कैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है?

उत्तर – प्रेम कविताएं लिखी तो थीं पर छपी कहाँ। शुरुआत में लिखी थीं जब मेरे पास वक्त होता था। छपने को भेजी भी नहीं कभी, और जमा होती गईं। लेकिन मेरे पति ने मुझसे कहा कि तुम क्या लिखती रहती हो? मैंने कहा मैं कविता लिखती हूँ, मैंने कहा था आप के लिए ही लिखी है। तो उन्होंने कहा कि मैं छपवा दूंगा और आठ दिन में किताब छपकर आ गई पता चला जहाँ शादी के कार्ड छपते हैं वहाँ से छपवाकर कर लाए। तो मेरी प्रेम कविताओं का यह हश्र हुआ।

प्रश्न– युवा लेखकों के लिए आपका क्या संदेश है?

उत्तर – युवा लेखक ही मेरे निशाने पर हैं, क्योंकि जो स्थापित लेखक – लेखिकाएँ हैं उनसे तो मुझे कुछ नहीं कहना वह खुद भी अपने आप को बहुत कुछ समझ लेते हैं। हिन्दी अकादमी की पत्रिका 'इंद्रप्रस्थ भारती' में तो युवाओं के लिए एक विषेश कॉलम रखा गया है। 'नई पौध' नाम से। जिसमें युवा विभिन्न विषयों पर लिख सकते हैं। युवाओं को मैं यही कहुँगी कि उन्हें बहुत सी किताबें पढ़नी चाहिए उनका पढ़ना बहुत जरूरी है लिखने के लिए। राजेंद्र यादव जी मुझे एक उपन्यास लिखने के लिए 10 से 15 उपन्यास पढ़वाते थे। हमेशा विषय अपनी रुचि का चुनना चाहिए।

प्रश्न – आपने कहानियाँ, उपन्यासों, कविताओं और लेख सभी पर काम किया है, इनमें से आपका सबसे पसंदीदा विधा कौन सी है?

उत्तर– उपन्यास।

प्रश्न– आप की सबसे पसंदीदा साहित्यिक रचनाएँ कौन–कौन सी हैं?

उत्तर – मैला आँचल, न हन्यते (मैत्री देवी), एक अनजान औरत का खत, नटरंग, कर्मशील, आदमी की निगाह में औरत (राजेंद्र यादव) आदि। मुझे कुछ अलग हटकर चीजें ही पसंद आती हैं, जो सब पढ़ते हैं वह मैं नहीं पढ़ सकती।

प्रश्न– राजेंद्र यादव जी हमारी समझ से आपके जीवन को बहुत प्रभावित करते हैं उनके बारे में दो शब्द–

उत्तर – उनके बारे में तो मेरी एक किताब भी आ रही है ''वह सफर था या मुकामः मेरी नजर में राजेंद्र यादव'' उनकी याद में मैंने यह भी रखा है 'आदमी की निगाह में औरत'। राजेंद्र यादव की एक किताब है– 'आदमी की निगाह में औरत' उसी तर्ज पर उन पर मेरी एक किताब आ रही है– 'वह सफर था या मुकामः मेरी नजर में राजेंद्र यादव'।

क्या खोया, क्या पाया

–ओम जी द्विवेदी, गणित विभाग

क्या खोया क्या पाया मैंने उम्र घटाकर बोल रहा हूँ,
स्मृतियों से भरे घरों को मार कंकडी तोड़ रहा हूँ
दिल के बांगर वीराने में बरस रही है नेह बदरिया
स्मृतियों की धूप छांव में सत्य असत्य निचोड़ रहा हूँ।।

सामाजिक स्तर या व्यक्तिगत स्तर पर अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करने का सिद्धांत एवं व्यवहार राजनीति कहलाता है। अधिक संकीर्ण रूप में देखें तो या कहें तो शासन में पद प्राप्त करना तथा उस पद का अपने लाभ के लिए सरकारी उपयोग करना राजनीति है। प्रारंभ में लोग समाज सेवा के लिए लोगों के दुःख दर्द एवं उनकी समस्याओं से शासन को अवगत कराने के लिए जिन तिकड़म का प्रयोग करते थे उसे राजनीति एवं उस व्यक्ति को राजनेता कहते थे, परंतु वर्तमान में बिल्कुल उल्टा हो गया है नेता के प्रमुख लक्षण निम्न प्रकार के हैं –

''कुर्सीचेष्टा वोटध्यानम् दान दृष्टि तथैव च,
चाराहारी पार्टीत्यागी नेताम् पंच लक्षणम्।।''

वर्तमान में राजनीति लोगों की कमाई का माध्यम बन गई है। इस प्रकार की राजनीति से क्षुब्ध होकर हिंदुस्तान के वीर रस के महान कवि डॉ. हरिओम पवार कहते हैं –

मेरे दर से खाली लौटे राजनीति के उड़न खटोले,
आखिर किसमें इतना धन है जो मेरी खुद्दारी तौले।।

राजनीति एवं कानून दोनों एक दूसरे के पूरक हैं अगर सरकार अच्छी होगी तो कानून व्यवस्था दुरुस्त होगी और अगर सरकार अच्छी नहीं है तो कानून व्यवस्था अच्छी होना चाहे तो भी नहीं हो सकती। अगर कोई कानूनी अफसर आगे आए भी तो उसके साथ तीन घटनाएं होने की संभावना हो सकती है,

1. उसका तबादला हो सकता है।
2. उसकी नौकरी जा सकती है।
3. उसे अपनी जिंदगी से हाथ धोना पड़ सकता है।

कई राज्यों में बुरा मत कहो नियम का पालन कई अफसर नहीं करते।

त्याग, व्यर्थ और सच्चाई अब नीलाम हो गई
घपलेबाजी की रंगबाजी अब आम हो गई

जालिम भ्रष्टाचार तुम्हारे चक्कर में
नैतिकता की मुन्नी बदनाम हो गई।

अब बात करते हैं उत्तर प्रदेश की, जनसंख्या की दृष्टि से बड़ा किंतु सुविधाओं की दृष्टि से पिछड़ा राज्य दूसरे शब्दों में कहें तो यह कहना गलत नहीं होगा कि कागजी कार्यवाही में संपन्न किंतु वास्तविकता में पिछड़ा राज्य यही सच्चाई है।

उत्तर प्रदेश की राजनीति मुख्यतः चार पार्टियों में बटी हुई है–

1. समाजवादी पार्टी
2. बहुजन समाजवादी पार्टी
3. भारतीय जनता पार्टी
4. कांग्रेस पार्टी

परंतु पिछले कुछ वर्षों से मुख्यतः पहली दो पार्टियों का दबदबा अधिक है इसका कारण है यहाँ की परंपरागत एवं जातिवाद पर आधारित राजनीति। इसी कारण राज्य सभा के चुनाव में दो ही पार्टी विजयी होती है। जो पार्टी जीतती है उसी की जाति के नेता मंत्री एवं विधायक बनाए जाते हैं। जिस इलाके में जिस जाति का बाहुल्य होता है पार्टियाँ उसी जाति का उम्मीदवार उस इलाके से चुनाव के समय खड़ा करती हैं। नोट के बदले वोट की प्रमुखता है यहाँ की। पैसे देकर टिकट लेना एक आम बात बन चुकी है जिस कारण चुनाव के समय यहाँ का माहौल दिलचस्प बन जाता है–

सत्ता की सभाओं में इंसान के नजारे बदल जाते हैं
राजनीति की काई पर इंसान के पैर फिसल जाते हैं
मायावी महल है आँखें खोल कर चलो यहाँ
पत्थर के बगुले हैं पैसे के लिए इंसान को निगल जाते हैं।।

मैंने पहले बताया था कि यदि कोई कानूनी अफसर कुछ करना चाहता है तो उसके साथ क्या–क्या घटनाएँ होने की संभावना है? इन घटनाओं का प्रयोग उत्तर प्रदेश में देखने को अधिक मिलता है प्रतापगढ़ के कुंडा में हुई घटना कुंडा कांड इस बात का उदाहरण है इसमें एक पुलिस अफसर जियाउलहक की हत्या करवा दी गई थी। मुजफ्फरनगर दंगे सरकार चाहती तो रुकवा सकती थी सरकार कुछ नहीं कर रही थी तो क्या हुआ पुलिस तो इस मामले को शांत करा सकती थी, परंतु करवाती कैसे माननीय मंत्री जी और नेताओं का दबाव जो था उसके ऊपर। इस वक्त सरकार भी तो उन्हीं की है तभी तो उत्तर प्रदेश के माननीय मंत्री जी आजम खान साहब की भैंस गुम हो जाने पर सभी आया ए एस और आई पी एस. उनकी भैंस ढूंढते हैं। इन सब बातों को सुनकर अनायास ही मुख से निकल पड़ता है

लोकतंत्र शासन में कुर्सी की सेवा
जनता रहे भूखी प्यासी, मंत्री जी को मेवा

वर्तमान की बात करें तो उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में एक बार फिर यह सामने आया कि खनन माफियाओं ने केन नदी से अवैध रूप से बालू निकालने के लिए खुद ही एक अवैध पुल का निर्माण कर दिया जबकि शाहजहांपुर में एक पत्रकार को पुलिस वालों ने जिंदा जलाने की कोशिश की है। क्योंकि वह कथित रूप से एक मंत्री की आंखों में खटक गया था दोनों प्रकरण दुस्साहस की बानगी है। शासन प्रशासन के प्रति कोई भय न होने का सीधा प्रमाण किसी व्यवस्था को न मानने की कुछ लोगों की जिद का ताजा सबूत है। अवैध खनन तो रुकवा दिया गया किंतु पत्रकार को जलाने वाले मंत्री जी पर कोई हाथ नहीं डाल रहा। अवैध पुल का निर्माण एवं मंत्री जी की गिरफ्तारी में देरी यह दोनों कार्य बिना किसी राजनीतिक संरक्षण के तो हो ही नहीं सकते। पत्रकार को जलाने के बाद कई ऐसी दुस्साहसी घटनाओं को अंजाम दिया गया। कानपुर में पत्रकार को बांधकर घसीटा गया है। इसलिए सारी घटनाएं हुई क्योंकि वह लोग जानते हैं कि इस समय हमारी पार्टी की सरकार है और पार्टी हमें कुछ नहीं होने देगी इस वजह से उनकी गिरफ्तारी नहीं हुई एक शायर ने बहुत सही कहा है –

नई हवाओं की सोहबत बिगाड़ देती है
कबूतरों को खुली छत बिगाड़ देती है
जो जुर्म करते हैं इतने बुरे नहीं होते
सजा न देकर अदालत बिगाड़ देती है।।

आज की रात कटेगी कैसे-1

अर्पित शुक्ला
हिंदी विभाग, द्वितीय वर्ष

आज की रात कटेगी कैसे
आँखों से आँसुओं की धारा अब रुकेगी कैसे
आज की रात कटेगी कैसे।।

कालरात्रि सी बनकर आया चंद्रमा की चमक चाँदनी
पूनम की उजियारी रातों में
मन की ज्वाला ठंडी हो कैसे
आज की रात कटेगी कैसे।।

अति पावन तट संगम का है
पलता है वहीं प्रेम मनभावन
मैं इलाहाबाद संगम तट पर बैठा हूँ
संगम से अलग जाऊँ कैसे
मृग नैनों में है रूप तुम्हारा
बदल रही है जीवन धारा
नयन नीर की प्रचंड वेग में
खुद को बहता देखूँ कैसे
आज की रात कटेगी कैसे।।

आज की रात कटेगी कैसे-2

न मैंने उसको देखा है, न उसने मुझको देखा है
फिर भी कुछ कसमें–वादे हैं
उन सबको अब भूलूँ कैसे
आज की रात कटेगी कैसे।।

दिल में हलचल मचा हुआ है
यादों का तूफान उठा हुआ है
लफ्जों पर सिर्फ नाम लिखा हुआ है
यह सब अब बंद हो कैसे
आज की रात कटेगी कैसे।।

तारे गिन–गिन इंतजार करूँ
उषा के आ जाने का
यह रवि का आशिक हूँ मैं कैसे
आज की रात कटेगी कैसे।।

आया वसंत

– करनेश, भौतिकी विभाग, तृतीय वर्ष

आया वसंत आया वसंत
न कोई पूर्ण विराम, न कोई हलंत
मजे हैं इसके अनंत
आया वसंत आया वसंत।।

पतझड़ गया नए पत्ते आए
हरे भरे पेड़ हर्शाए
मजे हैं इसके अनंत
आया वसंत आया वसंत।।

छोटी कलियाँ बन गई फूल
न इस ऋतु में उड़े कहीं धूल
मजे हैं इसके अनंत
आया वसंत आया वसंत।।

किसानों ने नई फसल लगाई
हुई बड़ी खुश धरती माई
मजे हैं इसके अनंत
आया वसंत आया वसंत।।

नए–नए तरह के पक्षी आए
बच्चे घुल मिल पतंग उड़ाए
मजे हैं इसके अनंत
आया वसंत आया वसंत।।

'महानायक मेजर ध्यानचंद'

– शुभम कुमार, भौतिकी विभाग तृतीय वर्ष

जिस समय पूरा विश्व उस जर्मन तानाशाह हिटलर के बारे में सुन रहा था उसे महसूस कर रहा था, उसी समय एक भारतीय खिलाड़ी ने उसके जर्मनी देश से खेलने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। जी हाँ, हम बात कर रहे हैं, हॉकी के जादूगर कहे जाने वाले मेजर ध्यानचंद की जिन्होंने अपने वक्त में ऐसे खेल का प्रदर्शन किया जिससे विश्व की बड़ी हस्तियाँ इसके हुनर की कायल हो गईं इसी तरह से उन्होंने अपनी प्रतिभा के दम पर भारत का नाम ऊंचा किया मेजर ध्यानचंद के जीवन से जुड़े कुछ पहलू निम्नलिखित हैं –

1. मेजर ध्यानचंद का जन्म 29 अगस्त 1905 ईस्वीं को इलाहाबाद में हुआ था। उनमें बचपन से खिलाड़ी बनने के कोई लक्षण नहीं थे इसलिए कहा जाता है कि हॉकी के खेल की प्रतिभा जन्मजात नहीं थी, बल्कि उन्होंने सतत साधना, अभ्यास, लगन, संघर्ष और संकल्प के सहारे यह प्रतिष्ठा अर्जित की थी। 16 वर्ष की अवस्था में दिल्ली में प्रथम ब्राह्मण रेजिमेंट में सेना में एक साधारण सिपाही की हैसियत से भर्ती हो गए। ध्यानचंद को हॉकी खेलने के लिए प्रेरित करने का श्रेय रेजीमेंट के एक सूबेदार मेजर तिवारी को जाता है मेजर तिवारी स्वयं भी खेल प्रेमी और खिलाड़ी थे।

2. ध्यानचंद को फुटबॉल में पेले और क्रिकेट में ब्रेडमैन के समतुल्य माना जाता है। इस कदर गेंद उनकी स्टिक से चिपकी रहती की प्रतिद्वंदी खिलाड़ी को अक्सर आशंका होती की जादुई स्टिक से खेल रहे हैं। यहाँ तक हॉलैंड में उनकी हॉकी स्टिक में चुम्बक होने की आशंका से उनकी स्टिक तोड़ कर देखी गई। जापान में ध्यानचंद की हॉकी स्टिक गेंद से जिस तरह चिपकी रहती थी उसे देख कर उनकी हॉकी स्टिक में गोंद लगे होने की बात कही गई।

3. 1928 में एमस्टर्डम ओलंपिक खेलों में पहली बार भारतीय टीम ने भाग लिया। एम्स्टर्डम में भारतीय टीम पहले सभी मुकाबले जीत गई। 17 मई को ऑस्ट्रेलिया को 6–0, 18 मई को बेल्जियम को 9–0, 20 मई को डेनमार्क को 5–0, 22 मई को स्वीटजरलैंड को 6–0 तथा 26 मई को फाइनल में हॉलैंड को 3–0 से हराकर विश्व भर में हॉकी के चैम्पियन घोषित हुए फाइनल में दो गोल ध्यानचंद ने किए।

   1932 में लॉस एंजिल्स में हुई ओलंपिक प्रतियोगिताओं में भी ध्यानचंद को टीम में शामिल किया गया तब सेना में वह लांस नायक के बाद नायक हो गए थे। इस दौरे के दौरान भारत ने काफी मैच खेले इस सारी यात्रा में ध्यानचंद ने 265 में से 101 गोल स्वयं किए। निर्णायक मैच में भारत ने अमेरिका को 24–1 से हराया था। तब एक अमेरिकी समाचार पत्र ने लिखा था कि भारतीय हॉकी टीम तो पूर्व से आया तूफान थी उसने अपने वेग से अमेरिकी टीम के 11 खिलाड़ियों को कुचल दिया।

   1936 के बर्लिन ओलंपिक्स खेलों में ध्यानचंद को भारतीय टीम का कप्तान चुना गया। 5 अगस्त के दिन भारत का हंगरी के साथ ओलंपिक्स का पहला मुकाबला हुआ जिसमें भारतीय टीम ने हंगरी को चार गोलों से हरा दिया। 15 अगस्त के दिन भारत और जर्मनी के बीच फाइनल मुकाबला हुआ और जर्मन की टीम को 8–1 से हरा दिया।

4. उन्हें 1946 में भारत के प्रतिष्ठित नागरिक सम्मान पद्मभूषण से सम्मानित किया गया था। ध्यानचंद को खेल के क्षेत्र में बहुत सी उपलब्धियाँ प्राप्त हुईं और यह सबसे बड़ी उपलब्धि है, कि उनके जन्मदिन को भारत का राष्ट्रीय खेल दिवस घोषित किया गया है। इसी दिन खेल में उत्कृष्ट प्रदर्शन के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार अर्जुन और द्रोणाचार्य पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। मेजर ध्यानचंद एक कुशल आचरण के व्यक्ति थे । उन्होंने गुलाम भारत को कई बार मुस्कुराने वाले पल दिए थे किंतु यह नायक ना जाने क्यों आज राजनीति का एक अहम मुद्दा बना हुआ है। सभी राजनीतिक दलों के मेजर ध्यानचंद को भारतरत्न देने पर अलग–अलग विचार हैं जो की बहुत निराशाजनक है, क्योंकि कोई भी खिलाड़ी राजनीति का हिस्सा नहीं होता और ना ही उसे राजनीति का हिस्सा बनाना चाहिए।

अनकही यादें.....

– इड़ा मिश्रा, भौतिकी विभाग, तृतीय वर्ष

मौसम बिल्कुल सुहावना था, हल्की–हल्की धूप लेकिन उससे बहुत ज्यादा ठंड, जिस कारण से ठंड सांस के साथ अंदर फेफड़ों को ठंडा कर रही थी। इतने ऊँचे–ऊँचे बर्फ के पहाड़ मानों आज ही आसमान को चीरकर बाहर निकल जाएँगे। यह सभी तो बचपन से ही पसंद था भास्कर को। बचपन में जिन जगहों को अक्सर वह किताबों में देखा करता था, अब जवानी में वह उन जगहों पर अपनी छुट्टियाँ बिताता था। इस बार उसने सर्दियों की छुट्टियों में दुनिया का जन्नत कही जाने वाली जगह कश्मीर को चुना था। भास्कर को वैसे ठंडी जगहों से बड़ा लगाव था। वह मनाली, मसूरी जैसी जगह पहले घूम चुका था और अब कश्मीर की बारी थी। भास्कर जिस होटल में ठहरा हुआ था उसी होटल में, बल्कि उसके बगल वाले रूम में क्लाइम्बर्स का एक ग्रुप भी ठहरा हुआ था। इससे भास्कर को बहुत फायदा था वह हमेशा उन्हीं के साथ घूमता रहता था। एक शाम जब भास्कर ग्रुप के साथ सैर पर निकला तो ठंड में चाय की चुस्की के मजे लेते हुए आगे बढ़ा। शाम को किसी ऊँची पहाड़ी पर ग्रुप आज रात को चढ़ने वाला था और अगली सुबह उस पर अपना झंडा लगाने वाला था। ग्रुप आगे बढ़ता जा रहा था मगर अब भास्कर उन्हें दूर से ही देखने लगा सभी लोगों ने अपने को चढ़ने के लिए तैयार किया और एक–एक करके अपनी मंजिल की ओर हो चले। भास्कर अभी यह सोच ही रहा था कि कुछ लोग होते हैं, जो अपने जुनून के आगे मौसम और हालातों को भी घुठने टेकने के लिए मजबूर कर देते हैं। यह सब भास्कर के लिए बिल्कुल अलग अनुभव था क्योंकि वह एक साधारण व्यक्ति था। मतलब जिसकी एक अपनी व्यवस्थित जॉब है ऑफिस के कुछ दोस्त और वही संतुष्टि भरा जीवन। जीवन को जीने के इस धर्म को देखकर भास्कर हैरान हुए जा रहा था, वह अब भी उसी ग्रुप के सदस्यों/मेम्बर्स को ही देखे जा रहा था। समय बीतने के साथ–साथ भास्कर के लिए उनके कद भी कम होते जा रहे थे लेकिन उनका यह हौसला भास्कर के दिल में नया जोश भर रहा था।

वह यह सब देख ही रहा था कि उसके कानों में किसी के गुनगुनाने की आवाज पड़ी। आवाज बर्फ की पहाड़ियों से ऐसे टकराकर आ रही थी मानो यह बर्फ धीरे–धीरे पिघल रही हो। आवाज बहुत ही सुरीली और दर्द से भरी थी। भास्कर उसी की ओर बहता चला गया। थोड़ा चलने पर आवाज और अधिक बढ़ गई और थोड़ा और आगे चला तो उसने देखा कि सफेद कपड़े पहने बहुत खूबसूरत एक लड़की बर्फ पर बैठी थी, उसकी साड़ी और चेहरे का रंग बर्फ से भी अधिक चमक रहा था। भास्कर एक टक उस लड़की को देखता रहा था मानो वह कोशिश कर रहा हो उस के दर्द को पढ़ने की। लेकिन थोड़ी देर में देखा कि उस लड़की के आँसू बहने लगे और उसने अपना हाथ पास रखे अपने बैग की ओर बढ़ाया और उसे उठा लिया फिर लड़की ने अपनी दोनों हथेलियों से बर्फ उठाया और अपने बैग में डाल दिया ऐसा उसने दो बार किया। इसके बाद वह लड़की उसी गीत को गाती हुई आँखों में आँसू भरे हुए वहाँ से चली गई। भास्कर भी उसके पीछे–पीछे चलने लगा और वह लड़की नंगे पैरों से बर्फ को पार करती हुई आगे बढ़ती चली गई और एक चर्च में जा पहुंची भास्कर भी उसके पीछे–पीछे वहीं उसी चर्च में पहुंच गया, पर वह लड़की भास्कर को फिर दिखाई नहीं दी उसने चारों ओर नजर दौड़ाई लेकिन जैसे वह लड़की गायब हो गई हो। भास्कर वहीं चर्च में बेंच पर बैठ गया। चर्च उन बर्फ की पहाड़ियों से लगभग 200 मीटर दूर था। थोड़ी देर में फादर वहाँ आ गए, वह चर्च के कामकाज में लग गए। भास्कर ने फादर से ही पूछ लिया फादर अभी कुछ देर पहले सफेद साड़ी पहने हुए रोती हुई एक लड़की चर्च में आई थी वह कौन है? और वह अब कहाँ चली गई? फादर कुछ देर तक चुप रहे थे और फिर सोच कर जवाब दिया। उसका नाम जेनी है, वह यहीं चर्च की देखरेख करती है यहीं कहीं होगी। भास्कर ने उत्सुकता से पूछा पर फादर वह रो क्यों रही थी और उसने बर्फ को भी अपने बैग में रखा क्यों फादर?

फादर ने जवाब दिया जेनी केरल से है, वह और उसका हस्बैंड आज से 5 साल पहले शादी के बाद यहाँ घूमने आए थे। जेनी के हस्बैंड का नाम मनीष था और जैनी ने अपने धर्म जाति और परिवार के लोगों को किनारे करके यह शादी की थी। मनीष अमेरिका में जॉब करता था और मुश्किल से काम से बच कर यहाँ करीब दो हफ्तें की छुट्टियां मनाने के लिए जेनी के साथ आया था। इतना कहकर फादर भास्कर को चर्च के बाहर वहीं बर्फ की पहाड़ी के पास ले गए जहां भास्कर ने जेनी को रोते देखा था। और बोले एक सुबह जेनी मनीष के साथ इन्हीं बर्फ की वादियों में

सैर कर रही थी, वह दोनों एक दूसरे का नाम जोर–जोर से पुकार रहे थे और पहाड़ से टकरा कर आने वाली आवाज से अपने प्यार का इजहार कर रहे थे। फिर मनीष ने जेनी को चर्च के करीब जाने को कहा और वह खुद इस बड़ी बर्फीली पहाड़ी के नीचे खड़ा हुआ और यहीं से जेनी का नाम पुकारने लगा। वह दोनों सोच रहे होंगे कि शायद यह प्यार के पल उनकी जिंदगी में फिर से कभी ना आए पर उन्हें क्या पता था की होनी को भी यही मंजूर था। दोनों ने अपनी–अपनी जगह खड़े हुए कुछ ही पल के भूकंप का अनुभव किया। वह दोनों सहम गए लेकिन कुछ पल बाद सब सही हो गया लेकिन उस बड़ी बर्फीली पहाड़ी का एक छोटा टुकड़ा अपनी जगह से खिसक गया और वह पूरी तेजी से नीचे आने लगा यह सब देखकर मनीष तेजी से चर्च की ओर भागने लगा लेकिन बर्फ के उस ढ़ेर की गति बहुत ज्यादा तेज थी, और वह अपने साथ मनीष को बहा ले गयी। यह सब देखती हुई जेनी भी मनीष की ओर दौड़ रही थी और अब वह पागलों की तरह उस बर्फ के ढेर को कुरेदती रहती है ताकि मनीष उसे कहीं मिल जाए तभी से जेनी ने इसी जगह को अपना लिया और अब तक अपने घर नहीं लौटी। वह रोज इसी बर्फ पर आती है रोती है और बर्फ के छोटे टुकड़ों को अपने साथ ले जाती है। जेनी को इस बात से कोई गुस्सा नहीं है, लेकिन शिकायत जरूर है कि इसने उससे मनीष से अलग कर दिया। इतना कहकर फादर चर्च की ओर चले गए। भास्कर अब भी उसी बर्फ में खड़ा था, वह पूरी तरह से सहम चुका था। प्यार के ऐसे रूप को देखकर जो किसी से कोई उम्मीद नहीं करता बस किसी अपने का इंतजार करता है।

पाँच पत्र : हरिमोहन झा

पहला पत्र

दरभंगा

दिनांकः 01–01–1921

प्रियतमे,

तुम्हारी लिखी हुई चार पंक्तियों को चार सौ बार पढ़ा फिर भी तृप्त नहीं हुआ। आचार्य की परीक्षा निकट है, किंतु पठन–पाठन में जरा भी मन नहीं लगता है। सर्वदा तुम्हारी मोहिनी मूर्ति मेरी आँखों में नाचती रहती है।

राधा–रानी! दिल चाहता है कि तुम्हारा गाँव वृंदावन बन जाता, जहाँ केवल तुम और मैं, राधा और कृष्ण की भांति अनंत काल तक विहार करते। परंतु हम दोनों के बीच में बाधा डालते हैं तुम्हारे पिताजी, जो 2 महीने के बाद, होली के अवसर पर मुझे आने के लिए लिखते हैं। साठ वर्ष के वृद्ध को क्या मालूम कि साठ दिन का विरह कैसा होता है।

प्राणेश्वरी! तुम एक काम करो माघी अमावस्या को सूर्यग्रहण लग रहा है। उसी अवसर पर अपनी माँ के साथ सिमरिया घाट आओ। मैं वहाँ जाकर तुम्हें ढूंढ़ लूंगा। हाँ, एक गुप्त बात लिख रहा हूँ। जब सभी स्त्रियाँ ग्रहण स्नान करने चली जाएंगी तब तुम कोई बहाना बनाकर डेरे पर रह जाना। मेरा एक मित्र फोटो खींचना जानता है। उससे मैं तुम्हारा फोटो खिचवाऊंगा। देखना यह बात और कोई ना जानने पावे। अन्यथा तुम्हारे और मेरे पिताजी जैसे हैं, सो तो तुम्हें मालूम ही है।

हृदयेश्वरी! मैं तुम्हारी फरमाइश का गहना 'चंद्रहार' खरीद कर रखा हुआ हूँ। सिमरिया में भेट होने पर चुप–चाप दे दूंगा। किंतु किसी को मालूम ना हो। यदि मेरे पिता जी को पता चल जाएगा, तो खर्चा देना भी बंद कर देंगे। हाँ, इस बात का जवाब शीघ्र ही लौटती डाक से देना। इसलिए लिफाफे के अंदर सादा लिफाफा डाल रहा हूँ। पत्रोत्तर देने में एक दिन का भी विलंब मत करना। मेरे लिए एक–एक क्षण युग सदृश लग रहा है।

तुम्हारी प्रतीक्षा में व्यग्र,

तुम्हारा कृष्ण।

पुनश्चः हाँ एक बात और! चिट्ठी लेटर–बॉक्स में डालने के लिए दूसरे किसी को नहीं भेजना, खुद अपने हाथों डाल देना। रात कुछ बाकी ही रहे तभी अपने आँचल में छिपा कर ले जाना और वहाँ जब कोई ना रहे तब लेटर–बॉक्स में चिट्ठी डाल देना।

दूसरा पत्र

हथुआ संस्कृत विद्यालय

दिनांकः 01–01–1931

प्रिये,

बहुत दिनों पर तुम्हारा पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। तुम लिखती हो कि बच्ची अब तूसारी (मिथिला में मनाए जाने वाला एक त्योहार) पूजेगी। मैं उसके लिए एक आठ हाथ वाली साड़ी शीघ्र ही भेज दूंगा। बंगट अब स्कूल जाता है या नहीं? शैतानी तो नहीं करता है? तुम लिखती हो कि छोटी बच्ची के दांत निकल रहे हैं सो तुम उसके लिए वैद्य जी से दवा मांग कर देना। तुम्हें भी इस बार घर पर बहुत दुबली देखा था। क्षीरकादिपाक बनाकर सेवन करो। जाड़े के मौसम में शरीर पुष्ट नहीं होगा तो दिन–दिन और दुबली होती जाओगी। वहाँ गाय का दूध प्रतिदिन पिया करो। कम से कम एक पाव नित्य। मैं कुछ दिनों के लिए यहाँ बुलवा लेता। किंतु यहाँ रहने में बहुत कठिनता है। दूसरी बात यह है कि विद्यालय से कुल साठ रुपए मिलते हैं, उससे यहाँ पांच आदमियों का गुजारा चलना कठिन है। तीसरी बात है कि बूढ़ी माँ के पास कौन रहेगा? यही सब सोचकर रह जाता हूँ। अन्यथा तुम्हारे यहाँ रहने से मुझे भी लाभ ही होता। दोनों समय तुम्हारे हाथ का बना भोजन मिलता। बंगट के पढ़ने की भी सुविधा होती। छोटी बच्ची को देखकर मन भी बहलता। परंतु क्या किया जाए?

बड़ी बच्ची कुछ सयानी हो जाए तो उसे माँ की सेवा में रखकर कुछ दिनों के लिए तुम यहाँ आ सकती हो। किंतु अभी तो घर छोड़ना तुम्हारे लिए संभव नहीं। मैं होली की छुट्टी में घर आने की चेष्टा करूंगा। यदि ना आ सका तो मनीऑर्डर द्वारा रूपए भेज दूंगा।

तुम्हारा देवकृष्ण

तीसरा पत्र

हथुआ संस्कृत विद्यालय

दिनांकः 01–01–1941

शुभाशीर्वाद,

तुम्हारा पत्र पाकर मैं घोर चिंता में डूब गया। इस साल की फसल बर्बाद हो गई। फिर साल भर तक गुजारा कैसे चलेगा। माँ के श्राद्ध में 500रूपए कर्ज लिए, जिसका सूद दिन–ब–दिन बढ़ता ही जा रहा है। दो महीने में बंगट की परीक्षा होगी। लगभग 50रूपए फीस लगेगी। यदि पास हो गया तो किताबों में भी रुपए लग जाएंगे। मैं उसी चिंता में ऊब–डूब हो रहा हूँ। यहाँ मैं एक माह का अग्रिम वेतन ले चुका हूँ। तो भी एक सौ ऊपर से और कर्जा हो गया। ऐसी स्थिति में 68 रुपये 14 आने मालगुजारी के लिए कहाँ से भेजूं? यदि हो सके तो तंबाकू बेचकर पिछला बकाया अदा कर देना। भोलबा बटायादार वाले खेत में इस बार रबी की फसल कैसी है? घर में एक मास के लिए भी चावल नहीं है, फिर भी तुम लिखती हो कि बच्ची ससुराल से 2 महीने के लिए आना चाहती है। यह जानकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया हूँ। वह गर्भवती है और उसके दो बच्चे हैं। सभी को संभालना तुमसे पार लगेगा? अब छोटी बच्ची 10 साल की हो गई है। उसके विवाह की चिंता है। रात–रात भर यही सब सोचता रहता हूँ। परंतु अपना साध्य ही क्या है? देखना चाहिए ईष्वर किस तरह बेड़ा पार लगाते हैं।

देवकृश्ण

चौथा पत्र

हथुआ संस्कृत विद्यालय

दिनांकः 01–01–1951

आषीर्वाद,

मैं 2 महीने से बहुत अस्वस्थ था। इसलिए पत्र नहीं भेज सका। तुम लिखती हो की बंगट पत्नी को लेकर कलकत्ता चला गया। सो आजकल बेटा–बहू जैसे नालायक होते हैं, वह तो ज्ञात ही है। मैंने उसके लिए क्या–क्या नहीं किया?

किस प्रकार से उसे बी.ए. पास कराया सो मैं ही जानता हूँ। अब वह उसका प्रतिफल दे रहा है। मैंने तो उसी दिन उसकी आशा छोड़ दी थी, जिस दिन मेरे जीते जी वह मूँछें छंटवाने लगा। सास के बहकावे में आकर हम लोगों को अपनी कमाई का रुपया नहीं देता है। मुझे यह मालूम होता की बहू आते ही ऐसा करने लगेगी तो मैं कदापि वैसे घर में बंगट का विवाह नहीं करता। पंद्रह सौ दहेज लेकर मैंने जो पाप किया उसका फल भुगत रहा हूँ। उसमें तो अब 15 पैसे भी बाकी नहीं रहे, फिर भी बेटा समझ रहा है कि बाबू जी घड़े में रूपए गाड़ कर रखे हुए हैं। बंगट अब कुछ भी नहीं देगा और नहीं तो बहू भी तुम्हारे साथ रहती। उसे चाहिए था कि तुम्हारे साथ रहकर भोजन बनाती, सेवा सुश्रुषा करती। किंतु वह तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध बंगट के साथ कलकत्ता चली गई।

वहाँ बंगट को 150रूपए में खुद का खर्च चलाना मुश्किल है। स्त्री को कहाँ से खिलाएगा? जो हम लोगों ने 30 वर्षों में नहीं किया सो इन लोगों ने द्विरागमन से 3 महीने के भीतर कर दिखाया। अस्तु! क्या करोगी? अभी वह नहीं समझता है। जब ज्ञान को होगा तब, उसे स्वयं सब कुछ दिखने लगेगा। ईश्वर उसे सम्मति दे। अधिक क्या लिखूं?

'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'

देवकृष्ण

पुनश्चः यदि घर–खर्च की तकलीफ हो तो जो जमीन तुम्हारे नाम पर है, उसे भरना(गिरवी) रखकर काम चलाना। तुम्हारा 'चंद्रहार' जो बंधक रखा हुआ है। सो जब भगवान की कृपा होगी तब कभी छूट ही जाएगा।

पांचवा पत्र

काषी

दिनांकः 01–01–1961

स्वस्ति श्री बंगट बाबू को मेरा शुभ आशीर्वाद।

यहाँ कुशल है। वहाँ की कुशल–कामना करता हूँ। पश्चात समाचार यह है कि इस जाड़े के मौसम में मुझे दमे की बीमारी पुनः उभर आयी है। सारी रात बैठ कर सांस लिया करता हूँ। अब काशी विश्वनाथ मुझे कभी संसार से उठाते हैं, सो मालूम नहीं। संग्रहणी भी नहीं छोड़ रही है। अब हम लोगों की दवा ही क्या है? 'औशधं जाह्नवी तोयं वैद्यो नारायणो हरिः।' यहाँ सत्यदेव मेरी सेवा करता है। नित्य मालिश करता है। गीला भात और केले का चोखा बना दिया करता है। तुम्हारी माँ को बातरस की बीमारी हो गई है, जान कर बहुत दुख हुआ। किंतु अब उसका उपाय ही क्या? वृद्धावस्था का कष्ट तो भुगतने में ही कुशल है। बूढ़ी चल फिर सकती है या नहीं? मैं आकर देखता परंतु आने जाने में 30–40 रूपए व्यर्थ ही खर्च हो जायेंगे। दूसरी बात यह है कि अब यात्रा करने में मुझे भी कष्ट होता है। तुमने लिखा है कि वह भी काशी वास करना चाहती है परंतु यहाँ बहुत कष्ट होगा। वह अपनी परिचर्या करने लायक तो है ही नहीं, मेरी सेवा क्या करेगी? दूसरी बात यह है कि जब तुम लोगों जैसा सुयोग्य बेटा बहू पास में मौजूद है, तब घर छोड़कर यहाँ क्या करने आएगी। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' वहाँ पर पोते–पोती को देखते रहती है। चिरंजीवी पौत्र को देखने की मुझे भी इच्छा होती रहती है। परंतु उपाय क्या? यज्ञोपवित होने तक यदि मैं जीवित रहा तो आकर आशीर्वाद दे जाऊंगा। तुम्हारा भेजा हुआ 30रूपए का मनीऑर्डर मुझे मिल गया है। उससे च्यवनप्राष खरीद कर खा रहा हूँ। भगवान तुम्हें सुखी रखे।

चिरंजीवी बहू को मेरा शुभाशीर्वाद देना। वह गृहलक्ष्मी है। तुम्हारी माँ जो उससे झगड़ा करती है, सो परम अनर्गल करती है। परंतु बूढ़ी का स्वभाव तो तुम्हें मालूम ही है। वह जीवन भर मुझे दुख देती रही। अस्तु! ' कुमाता जायेत क्वचिदपि कुपुत्रो न भवति' इस उक्ति को तुम चरितार्थ करना।

पुनश्चः यदि किसी दिन बूढ़ी को कुछ हो जाए तो तुम लोगों की बदौलत उसकी सद्गति होगी ही। जिस दिन उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हो, उस दिन एक लकड़ी मेरी ओर से भी उन पर डाल देना।

इति देव कृष्णस्य

– प्रस्तुति, साँई विश्वकर्मा, इतिहास विभाग, द्वितीय वर्ष

धरती की ममता

–स्टीफन ज्विग

सन 1918 की गर्मियों की एक रात को एक मछुवारे ने स्विट्जरलैण्ड के छोटे से विलेन्व्यू कस्बे के पास जिनेवा झील में अपनी नाव पर से पानी की सतह पर कुछ अजीब–सी चीज देखी। जब वह उसके नजदीक पहुंचा तो उसे पता चला कि वह शहतीरों को उल्टा–सीधा बांधकर बनाया हुआ बेड़ा है, जिसे एक नंगा आदमी एक तख्ते की मदद से जैसे–तैसे चलाने की कोशिश कर रहा है। वह आदमी जाड़े से अकड़ रहा था और थकान से चूर–चूर हो रहा था। चकित मछुवे के दिल में दया उपजी। उसने ठिठुरते आदमी को अपनी नाव पर ले लिया। उसके पास जालों को छोड़ और कुछ नहीं था। इसलिए कुछ जालों से ही उसके बदन को ढक दिया और उससे बातचीत करने की चेष्टा करने लगा, लेकिन नाव की तली में सिकुड़े बैठे उस अजनबी ने ऐसी जबान में जवाब दिया कि उसका एक अक्षर भी मछुवा नहीं समझ पाया। हारकर उसने अपनी कोशिश छोड़ दी, जाल समेटा और किनारे की ओर चल दिया।

जब सबेरे के उजाले में दिखाई देने लगा तो वह नंगा आदमी पहले की अपेक्षा कुछ ज्यादा खुश मालूम हुआ। उसके मुंह पर, जो आधा बेतरतीब उगी घनी मूंछों और दाढ़ी में छिपा था, मुस्कराहट खेलने लगी। वह किनारे की ओर इशारा करके कुछ जिज्ञासा और कुछ खुशी से बार–बार एक शब्द बोलने लगा जो सुनने में रोशिया जैसा लगता था। नाव ज्यों–ज्यों जमीन के निकट आती गई उसकी आवाज में विश्वास और उल्लास बढ़ने लगा। आखिरकार नाव किनारे पर आकर लग गई। मछुओं की औरतें रात को पकड़ी गई चीजों को उतारने के लिए आईं लेकिन चौंककर चीख उठीं।

मछुवे को झील में जो मिला था, उसकी अजीबो गरीब खबरें फैलते ही गांव के दूसरे लोग वहां जमा हो गये। उनमें उस छोटी सी जगह का महापौर भी था। भले आदमी ने, जो अपने को न जाने क्या समझता था और पद की जिसमें दमक थी, उन सारे कानून–कायदों को याद किया, जो लड़ाई के चार सालों के दरमियान सदर मुकाम से जारी किये गए थे। यह मानकर कि नवागन्तुक झील के फ्रांसीसी किनारे से भागकर आया होगा, उसने फौरन जाब्ते की जांच करने की कोशिश की, लेकिन तत्काल एक ऐसी रुकावट समाने आ गई, जिससे वह हैरान हो गया। वे एक–दूसरे को समझ नहीं सकते थे। जो भी सवाल उस अजनबी से (जिसे किसी गांव वाले ने लाकर पुराना कोट और पतलून पहना दिया था) किये जाते थे, उनका वह दयनीय तथा बिखरी आवाज में सिवा अपने सवाल रोशिया? रोशिया? के और कोई जवाब नहीं देता था। अपनी असफलता से कुछ खिन्न होकर, उस शरणार्थी को पीछे आने का इशारा करके, महापौर कचहरी की ओर चला। युवकों के, जो वहां इकट्ठे हो गये थे, कोलाहल के बीच किसी दूसरे के ढ़ीले–ढ़ाले हवा में फड़फड़ाते कपड़े पहने वह आदमी नंगे पैर उसके पीछे चल दिया। वे लोग अदालत पहुंचे और वहां उसे सुरक्षा अधिकारी को सौंप दिया गया। अजनबी ने आनाकानी नहीं की और न मुंह से एक शब्द ही निकाला, लेकिन उसके चेहरे पर दुःख की रेखाएं उभर आईं। बड़े डर से वह झुका, मानों उसे लग रहा हो कि अब उसकी ठुकाई होगी।

आसपास के होटलों में भी मछुवे की इस विशेष उपलब्धि की खबर आनन–फानन में फैल गई। इस बात से खुश होकर कि उन्हें कुछ ऐसी जानकारी मिलेगी, जिससे उनका एक घंटा मजे में कट जायगा, पैसे वाले लोग उस जंगली आदमी की जांच पड़ताल के लिए आये। एक स्त्री ने उसे कुछ मिठाइयां दीं। लेकिन बन्दर की भांति संदेह से उसने उन्हें छूने तक से इन्कार कर दिया। एक आदमी कैमरा लेकर आया और उसकी एक तस्वीर खींच ली। उस विचित्र आदमी को घेर कर लोग बड़े आनन्द से बातें करने लगे। अंत में वहां पास के एक बहुत बड़े होटल का मैनेजर आया। वह बहुत–से देशों में रह चुका था और कई भाषांए अच्छी तरह जानता था। उसने जर्मन, इतालवी, अंग्रेजी और आखिर में रुसी, इस तरह एक के बाद एक बोली में उस अजनबी से, जो अब विस्मित और आंतकित हो उठा था, बात करने का प्रयत्न किया। रूसी भाषा का पहला शब्द सुनते ही उस बेचारे में हिम्मत आ गई उसका चेहरा मुस्कराहट से चमक उठा। बड़े विश्वास के साथ उसने फौरन अपना इतिहास सुनाना आरम्भ कर दिया। वह इतिहास लम्बा था और उलझा हुआ था। पूरी तरह समझ में नहीं आता था। फिर भी कुल मिलाकर कहानी इस प्रकार थी ।

उसने रूस में लड़ाई लड़ी। एक दिन हजार आदमियों के साथ उसे रेल के डिब्बे में ठूंस दिया गया और उसको ट्रेन से बड़ा लम्बा सफर तय करना पड़ा। इसके बाद उसे एक जहाज पर चढ़ाया गया और पहले से और भी लम्बा सफर

कराया गया। यह सफर ऐसे समुद्र में हुआ कि मारे गर्मी के उसे छठी का दूध याद आ गया। अंत में वे लोग जमीन पर उतरे और फिर रेल से चले। जैसे ही वे रेल से उतरे कि उन्हें एक पहाड़ी को उड़ाने के लिए भेजा गया। इस लड़ाई के बारे में वह आगे कुछ नहीं बता सका, क्योंकि शुरू में ही वह टांग में गोली लगने के कारण गिर गया था।

उसने जो कुछ कहा, उससे इतना स्पष्ट हो गया कि वह शरणार्थी उस रूसी दस्ते का था, जो साइबेरिया भेजा गया था। और जिसे ब्लाडीवोस्टोक से फ्रांस के लिए जहाज द्वारा रवाना किया गया था।

हर आदमी कौतूहल और द्रवित भाव से जानना चाहता था कि वह आदमी उस सफर के लिए कैसे प्रेरित हुआ, जो उसे उस झील में लेकर आया।

मुक्त भाव से मुस्कराते, फिर भी चतुराई दिखाते उस रूसी ने बताया कि अपने घाव के कारण जब वह अस्पताल में था, उसने पूछा कि रूस किधर है? और उसे उसके घर की आम दिशा बता दी गई। जैसे ही वह चलने लायक हुआ, वह वहां से निकल पड़ा और सूरज तथा सितारों से दिशा का अंदाज करता घर की ओर बढ़ा। वह रात को चला दिन को चला और गश्त करने वालों को चकमा देने के लिए घास के ढेर में छिपता रहा। खाने के लिए उसने कुछ फल इकट्ठे कर लिये। यहां–वहां से रोटी भी मांग लेता था। आखिर रात चलने के बाद वह इस झील पर पहुंचा।

अब आगे की कहानी फिर उलझ गई। वह साइबेरिया का किसान था। उसका घर बेकाल झील के पास था। वह जेनेवा झील के दूसरे किनारे की कल्पना कर सकता था। और उसने सोचा, वह जरूर रूस होगा। उसने एक झोंपड़ी से दो शहतीर चुराये और उनके ऊपर झील पार की और वहां आया, जहां मछुवे ने उसे उत्सुकता से यह पूछते हुए अपनी कहानी समाप्त की, क्या मैं कल घर पहुंच सकता हूं?

इस सवाल के तजुर्में से वे लोग बड़े जोर से हंस पड़े, जिन्होंने पहले सोचा कि वह निरा बुद्धू है, लेकिन बाद में सोचने पर वे हमदर्दी से भर उठे और सबने थोड़ा–थोड़ा पैसा उस डरपोक और रुआंसे भगोड़े के लिए इकट्ठा कर दिया।

लेकिन अब पुलिस का एक ऊंचा अफसर जिसे फोन करके मोंत्रू से बुलाया गया था, वहां आया और बड़ी कठिनाई से उसने रिपोर्ट तैयार की। छानबीन के दौरान न सिर्फ वह दुभाषिया हैरान हो उठा, बल्कि उस साइबेरियावासी के शिष्टाचार के तौर तरीके न जानने से उसके दिमाग और पश्चिमी देशों के लोगों के बीच खाई पैदा हो गई। उसे अपने बारे में अधिक जानकारी नहीं थी। सिवा इसके कि उसका नाम बोरिस था। वह अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ उस विशाल झील से कुछ ही फासले पर रहता था। वे लोग प्रिंस मैचस्की के गुलाम थे। वह गुलाम शब्द का ही प्रयोग कर रहा था, हालांकि पचास वर्ष पहले रूस में गुलामी का खात्मा हो चुका था।

अब उसके भाग्य को लेकर बहस–मुबाहिसा होने लगा। बेचारा आदमी अपने कंधे झुकाये और बुझे चेहरे से उन बहस करने वालों के बीच खड़ा था। कुछ ने सोचा कि उसे बर्न के रूसी दूतावास में भेज देना चाहिए, लेकिन दूसरों ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा कि इसका नतीजा यह होगा कि उसको फिर फ्रांस भेज दिया जायगा। पुलिस के अफसर ने बताया कि यह फैसला करना कितना मुश्किल होगा कि आया उसको एक भगोड़ा माना जाय या बिना परिचय–पत्रों के एक परदेशी समझा जाय। जिले के राहत अधिकारी ने कहा कि उस यायावर का स्थानीय जमात के खर्च पर खाने और रहने का हक नहीं हो सकता। एक फ्रांसीसी ने उत्तेजित होकर दखल देते हुए कहा कि उस बदकिस्मत भगोड़े का मामला बहुत साफ है। काम पर लगाओं या सीमा के बाहर भेज दो। दो महिलाओं ने प्रतिवाद किया कि उस बेचारे का उसके दुर्भाग्य के लिए दोष नहीं दिया जा सकता। लोगों को उनके घरों से दूर करना और दूसरे देश में भेज देना अपराध है। जब एक बुजुर्ग डेनमार्क–निवासी ने अचानक कहा कि आगामी पूरे सप्ताह के लिए वह उस अजनबी का खर्चा दे देगा और इस बीच नगर निगम रूसी दूतावास से बात कर ले तो ऐसा दीख पड़ा मानो राजनैतिक झगड़ा उठ खड़ा होगा। इस अप्रत्याशित समाधान से सरकारी परेशानी दूर हो गई और बहस करनेवालों के मतभेद भुला दिये गए।

जिस समय बहसें जोरों से चल रही थीं, उस भगोड़े की डरपोक आंखें होटल के मैनेजर के होठों पर जमी थीं। उस भीड़ में वही एक आदमी था, जो उसकी किस्मत का निबटारा कर सकता था। भगोड़े के वहां आने से जो जटिलाताएं पैदा हो गई थीं, उन्हें वह कम ही समझ पाता जान पड़ता था। जब कोलाहल थम गया तो उसने अपने जुड़े हुए हाथ

मैनेजर के चेहरे की ओर याचना के रूप में उठाये जैसे कोई स्त्री किसी देवता की अभ्यर्थना कर रही हो। उसके इस संकेत से सबके दिल भर आये। मैनेजर ने आत्मीयता से उसे भरोसा दिलाया कि वह अपने मन पर से सब तरह के बोझ को उतार दे। उसे कुछ दिन यहां रहने दिया जाएगा। उसको कोई भी हानि नहीं पहुंचा सकेगा और उसकी जरुरतें उस गांव के होटल से पूरी कर दी जायेगी। रूसी ने मैनेजर का हाथ चूमना चाहा लेकिन मैनेजर ने आभार के इस अपरिचित रूप को स्वीकार नहीं किया। वह शरणार्थी को सराय में ले गया जहां उसके खाने–पीने और रहने की व्यवस्था होनी थी। उसने एक बार फिर उसे आश्वस्त किया कि सबकुछ ठीक होगा और विदाई के रूप में आखिरी बार सिर झुकाकर होटल को वापस चला गया।

भगोड़ा मैनेजर को जाते हुए देखता रहा। उसका चेहरा एक बार फिर उस आदमी के चले जाने से दुःखी हो उठा, जो उसकी बात समझ सकता था। उन लोगों की चिन्ता किये बिना जो उसके विचित्र व्यवहार पर मनोरंजन कर रहे थे, । वह अपने मित्र के तब तक देखता रहा, जब तक कि वह कुछ ऊंची पहाड़ी पर बने होटल में उसकी आंखों से ओझल न हो गया।

अब एक दर्शक ने उस रूसी के कंधे पर दया–भाव से हाथ रखा और सराय के दरवाजे की ओर इशारा किया। सिर झुकाये वह उस अस्थायी आवास में घुसा। उसे एक कमरा दिखा दिया गया और मेज पर बिठा दिया गया। उसे एक गिलास ब्रांडी दी गई। यहां उसने बड़ी बेचौनी में सबेरे का बाकी समय गुजारा। गांव के बच्चे बराबर खिड़की से उसकी ओर झांक रहे थे। वे हंसते थे और कभी–कभी उसको जोर से पुकारते थे। लेकिन उसने परवा नहीं की। ग्राहक उत्सुकता से उसकी ओर देखते थे लेकिन वह सारे समय शर्म और संकोच से मेज पर निगाह जमाये बैठा रहा। जब रात का खाना परोसा गया, तो कमरा हंसी–खुशी से बातें करते लोगों से भर गया। लेकिन वह रूसी उनकी बातचीत का एक शब्द भी नहीं समझ सका। इस अनुभूति से वह दुःखी था कि वह उन अजनबियों में एक अजनबी है। वह उन आदमियों के बीच गूंगे–बहरे की तरह था, जो मजे में अपनी बातें कर सकते थे। उसके हाथ इतने कांप रहे थे कि वह अपना शोरबा भी नहीं पी सकता था। एक आंसू उसके गाल पर होकर मेज पर गिर पड़ा। उसने कातर भाव से अपने चारों ओर देखा। मेहमानों ने उसकी वेदना को समझा। सारे समाज पर खामोशी छा गई। मारे शर्म के उसका सिर इतना झुक गया कि काली लकड़ी की मेज से सट गया।

शाम तक वह कमरे में रहा। लोग आये और चले गये, लेकिन न उसे उनका पता चला और न उन्हें इसका। वह स्टोव की छाया में बैठा रहा। उसके हाथ मेज पर टिके रहे। उसकी मौजूदगी को हर कोई भूल गया। अचानक वह उठा और बाहर चला गया तब भी किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। मूक पशु की भांति वह भारी मन से पहाड़ी के होटल में गया और बड़ी विनम्रता से, टोपी हाथ में लिये, सदर दरवाजे के बाहर खड़ा हो गया। पूरे एक घंटे वह वहां खड़ा रहा, पर किसी ने उसे देखा तक नहीं। अंत में रोशनी में चमकते होटल के दरवाजे पर पेड़ के तने की तरह खड़े उस अजनबी आदमी पर एक बोझी की निगाह गई और वह मैनेजर को बुलाने चला गया। उस साइबेरियावासी के चेहरे पर आंनद की लहर दौड़ गई, जब मैनेजर ने आकर प्यार से कहा

कहो, बोरिस, तुम्हें क्या चाहिए?

क्षमा... करिये रूक–रूक कर भगोड़े ने कहा, मैं बस इतना जानना चाहता हूं। कि... आया मैं घर जा सकता हूं?

कल?

मैनेजर गंभीर हो उठा। यह शब्द उसने इतनी दयनीयता मे साथ कहा था कि मैनेजर की हंसी काफूर हो गई।

नहीं बोरिस, अभी नहीं... जबतक युद्ध समाप्त न हो जाय तब तक नहीं।

कब तक? युद्ध कब समाप्त होगा?

भगवान जाने! कोई भी आदमी यह नहीं बात सकता।

क्या मुझे इतने दिन रुकना ही होगा? क्या मैं जल्दी नहीं जा सकता?

हां, बोरिस।

क्या मेरा घर बहुत दूर है?

हां।

कई दिन का सफर है?

हां, बहुत, बहुत दिनों का।

लेकिन मैं वहां पैदल जा सकता हूं। मैं बहुत मजबूत हूं। थकूंगा नहीं।

तुम ऐसा नहीं कर सकते, बोरिस!आगे एक सरहद और है, जिसे घर पहुंचने से पहले तुम्हें पार करना होगा।

एक सरहद? उसने हैरान होकर उसकी ओर देखा। यह शब्द उसकी समझ से परे था।

इसके बाद बड़े ही आग्रह से उसने आगे कहा, मैं तैर कर वहां जा सकता हूं।

मैनेजर मुश्किल से हंसी रोक पाया, लेकिन वह उसकी हालत से दुःखी हो गया।

उसने धीरे–से कहा, नहीं, बोरिस, तुम ऐसा नहीं कर पाओगे सरहद का मतलब होता है दूसरा देश। वहां के लोग तुम्हें उस देश से नहीं गुजरने देंगे।

लेकिन मैं उन्हें कोई नुकसान नहीं पहुंचाऊंगा। मैंने अपनी बंदूक फेंक दी है। वे क्यों मुझे अपनी स्त्री के पास जाने की इजाजत देने से इन्कार कर देंगे, जबकि मैं ईस के नाम पर गुजरने की प्रार्थना करूंगा?

मैनेजर का चेहरा और भी गंभीर हो गया। उसकी आत्मा बेचैन हो गई।

नहीं, उसने कहा, वे तुम्हें नहीं जाने देंगे, बोरिग, ईसा के नाम पर भी नहीं आदमी अब ईसा के शब्द नहीं सुनते।

लेकिन मैं अब क्या करूं? मैं यहां नहीं रह सकता। मैं क्या कहता हूं। कोई नहीं समझता, न मैं लोगों की बात समझता हूं।

तुम कुछ ही दिनों में उनकी बात समझना सीख लोगे।

नहीं, उसने सिर हिलाया, मैं कभी नहीं सीख पाऊंगा। मैं धरती जोत सकता हूं और कुछ नहीं कर सकता। यहां मैं क्या करुंगा? मैं घर जाना चाहता हूं। मुझे कोई रास्ता बता दो।

कोई रास्ता नहीं हैं, बोरिस।

लेकिन वे लोग मुझे अपनी स्त्री–बच्चे के पास वापस जाने से नहीं रोक सकते अब मैं सैनिक नहीं हूं।

ठीक हैं, बोरिस, पर वे रोक सकते हैं।

लेकिन जार? वह जरूर ही मेरी मदद करेगा। यह विचार अचानक उसके मन में आया था। आशा से वह थरथर कांपने लगा और जार का नाम उसने बड़े आदर से लिया।

बोरिस, अब जार नहीं रहा। उसे गद्दी से उतार दिया गया।

अब जार नहीं है? उसने शून्य आंखों से मैनेजर की ओर देखा। आशा की आखिरी किरण भी लुप्त हो गई थी। उसकी आंख से भी चमक जाती रही। उसने पस्त होकर कहा, अच्छा, तो मैं घर नहीं जा सकता?

अभी नहीं, बोरिस तुम्हें रुकना होगा।

क्या बहुत दिन तक?

मैं नहीं जानता।

अंधकार में वह चेहरा और भी निराश हो गया।

मैं इतने दिन रुका रहा हूं। अब मैं और अधिक कैसे रुक सकता हूं? मुझे रास्ता बता दो। मैं कोशिश करूंगा।

बोरिस, रास्ता कोई भी नहीं है। वे तुम्हें सरहद पर गिरफ्तार कर लेंगे तुम यहीं रहो। हम तुम्हारे लिए कुछ काम खोज देंगे।

यहां लोग मेरी बात नहीं समझते, मैं उनकी बात नहीं समझ सकता। उसने टूटे शब्दों में कहा, मैं यहां नहीं रह सकता। मेरी मदद कीजिये।

मैं कुछ नहीं कर सकता, बोरिस।

ईसा के नाम पर मेरी मदद कीजिये, नहीं तो मेरे लिए कोई उम्मीद नहीं है।

मैं तुम्हारी मदद नहीं कर सकता, अब आदमी एक–दूसरे की मदद नहीं कर सकता।

वे दोनों एक–दूसरे की ओर ताकते खड़े रहे। बोरिस अपनी उंगलियों के बीच टोपी को मरोड़ता रहा।

वे मुझे घर से क्यों ले गये थे? उन्होंने कहा था कि मुझे रूस के लिए और का उन्होंने क्या किया है?

उन्होंने उसे गद्दी से उतार दिया है।

गद्दी से उतार दिया है? उसने रुखाई से इन शब्दों को दोहराया, लेकिन मैं अब क्या करुं? मुझे जरूर घर जाना है। मेरे बच्चे मेरे लिए बिलख रहे होंगे। मैं यहां नहीं रह सकता कृपा करके मेरी मदद कीजिये।

मैं कुछ नहीं कर सकता, बोरिस।

कोई भी मेरी मदद नहीं कर सकता।

नहीं।

रूसी ने और भी दुःखी होकर अपना सिर झुका लिया। अचानक उसने मंद स्वर में कहा

धन्यवाद! इतना कहकर वह मुड़ा और चल दिया।

धीरे–धीरे वह पहाड़ी के नीचे उतरा। मैनेजर उसे जाते देखता रहा। उसे यह देखकर अचरज हुआ कि वह सराय में क्यों नहीं गया, झील को जाने वाले रास्ते पर आगे बढ़ गया। एक आह भरकर वह बेचारा रहमदिल दुभाषिया मैनेजर होटल में अपने काम पर चला गया।

संयोग से उसी मछुवे को, जिसने उस जिन्दा साइबेरिया के निवासी को बचाया था, दूसरों के पहनाये कोट और पतलून की तह करके टोपी के साथ किनारे पर रख दिये थे और पानी में कूद पड़ा था, ठीक वैसे ही निर्वस्त्र जैसे कि वह पानी में से निकला था।

चूंकि उस परदेशी का नाम कोई नहीं जानता था। इसलिए उसका स्मारक तो बन नहीं सकता था। उसकी समाधि पर बस बिना नाम का लकड़ी का एक सलीब लगाया जा सकता था।

प्रस्तुति – प्रतिभा, हिंदी विभाग, तृतीय वर्ष

वह अभागा!

–लू सुन

चीन के दूसरे भागों की भांति ल्यूचेन में शराब की दुकानें नहीं हैं। उन सब पर सड़क की ओर मुंह किये काउण्टर हैं। वहां पर शराब को गर्म करने के लिए गर्म पानी की व्यवस्था रहती है। दोपहर या शाम को लोग अपने काम से छुट्टी पाकर वहां आते हैं और एक प्याली शराब खरीद लेते हैं। बीस साल पहले उसके लिए चार कैश लगते थे, अब दस देने पड़ते हैं। काउण्टर के सहारे खड़े होकर वे गरमागरम शराब पीते हैं और अपनी थकान दूर करते हैं। कुछ कैश देकर खाने की चीजें भी ली जा सकती हैं। इन ग्राहकों में अधिकतर ऊंचे कोटवाले गरीब तबके के लोग होते हैं। उनमें से शायद ही किसी के पास ज्यादा पैसे होते हों। सिर्फ लम्बे चोंगे पहने धनी ही बराबर के कमरे में जाते

हैं और वहां बैठकर आराम से खाते–पीते हैं।

बारह साल की उम्र में मैंने शहर के किनारे वाले सियेन हैंग शराबघर में बैरे के रूप में काम करना शुरू किया था। शराबघर के मालिक ने कहा कि लम्बे चोंगे वाले खुशहाल ग्राहकों को खिलाने–पिलाने के ख्याल से मैं बड़ा बुद्धू दिखाई देता हूं, इसलिए मुझे बाहर के कमरे में कुछ काम सौंपा गया। हालांकि छोटे कोटवाले गरीब ग्राहक लम्बे चोंगे वाले अमीरों की निस्बत ज्यादा आसानी से खुश हो जाते थे, लेकिन उनमें कुछ बहुत ही झगड़ालू किस्म के भी होते थे। वे खुद अपनी आंखों से पीपे में से ढलती शराब देखने का आग्रह रखते थे, जिससे उन्हें पता चल जाय कि शराब के बर्तन की तली में पानी तो नहीं है और उसे गर्म पानी में ठीक से रखा गया या नहीं। जब इतनी बारीकी से जांच की जाती थी तो शराब में पानी मिलाना बड़ा मुश्किल था। इसलिए कुछ ही दिन बाद मेरे मालिक ने तय किया कि मैं इस काम के लायक नहीं हूं। खुशकिस्मती से मेरी सिफारिश किसी प्रभावशाली आदमी ने की थी, इससे वह मुझे बरखास्त तो नहीं कर सकता था। मेरी बदली शराब को गर्म करने के नीरस काम पर कर दी गई।

तब से दिन भर मैं काउण्टर के पीछे खड़ा रहता और पूरी तरह अपने काम को अंजाम देता रहता। हालांकि मेरे इस काम से मालिक को संतोष मालूम होता था, लेकिन वह काम मुझे फीका और फालतू मालूम होता था। हमारा मालिक देखने में बड़ा खूंखार लगता था और ग्राहक रूखे होते थे, सो वहां खुश रहना असंभव था। बस कुंग–ची के शराबघर में आने पर मेरी हंसी सुनाई देती थी। यही वजह है कि वह मुझे अब तक याद आता है।

कुंग–ची लम्बे लबादे वाला एक ग्राहक था, जो खड़े होकर शराब पीता था। वह लम्बे कद का आदमी था। उसके चेहरे का कुछ अजीब–सा रंग था और उसके मुंह की झुर्रियों के बीच घाव के निशान दिखाई देते थे। उसके लम्बी दाढ़ी थी, जिसके बाल बेतरतीबी से बिखरे रहते थे। यद्यपि वह लम्बा चोंगा पहनता था, लेकिन वह चोंगा गंदा और फटा हुआ था। लगता था, मानों दस साल से न तो धुला है, न उसकी मरम्त हुई है। अपनी बातचीत में वह इतने ज्यादा पुराने मुहावरे बोलता था कि जो कुछ वह कहता था, उसका आधा भी समझ पाना असंभव था। वह जब भी दुकान में आता था, हर आदमी उसकी ओर देखता था और मुस्करा उठता था। कोई–कोई कहता था, ''कुंग, तुम्हारे चेहरे पर कुछ ताजे निशान दिखाई दे रहे हैं।''

बिना उस ओर ध्यान दिये वह काउण्टर पर आकर कहता, ''दो प्याले गर्म शराब लाओ और एक प्लेट मसालेदार फलियां।'' उसका पैसा चुका देता। इसी बीच जानबूझकर ऊंची आवाज में कोई बोल पड़ता, ''तुम फिर चोरी करने लगे होंगे।''

आंखें फाड़कर वह कहता, ''किसी भले आदमी के नाम पर बिना बात क्यों बट्टा लगाते हो?''

भले आदमी के नाम पर! अरे, परसों ही तो मैंने तुम्हें हो–परिवार से किताबें चुराने पर ठुकते देखा था।''

इस पर कुंग लाल–पीला हो उठता। उसके माथे की नसें उभर आतीं और वह बिगड़कर कहता, ''किताब लेने को चोरी नहीं माना जा सकता। ....किताब लेना, यह तो विद्वान का काम है। नहीं, उसे चोरी नहीं कहा जा सकता।''

फिर वह पुराने ग्रंथों के हवाले देता, जैसे पूर्ण व्यक्ति गरीबी में संतुश्ट रहता है, और ऐसे पुरातन उद्धरण वह तब तक देता रहता, जब तक कि हर आदमी हंसी से लोटपोट न हो जाता और सारे शराबघर में आनंद की लहर न दौड़ने लगती।

लोगों की गपशप से पता चला कि कुंग ने प्राचीन साहित्य का अध्ययन अवश्य किया था, लेकिन कोई सरकारी परीक्षा उसने उत्तीर्ण नहीं की थी। उसके पास कोई कमाई का कोई साधन भी नहीं था। वह दिन–ब–दिन गरीब होता गया और अंत में भीख मांगने की हालत में आ गाया। भाग्य से उसकी लिखावट अच्छी थी और अपनी गुजर–बसर करने के लिए नकल करने का उसे काफी काम मिल जाता था। दुर्भाग्य से उसमें कमियां थीं। उसे शराब पीना अच्छा लगता था और वह काबिल भी था। इसलिए कुछ दिन के बाद जरूरी तौर पर वह गायब हो जाता था और अपने साथ किताबें, कागज, बुरूश और स्याही ले जाता था। जब ऐसा कई बार हो चुका तो नकल करने के लिए कोई भी उसे काम पर लगाने को राजी नहीं हुआ। अब उसके सामने सिवा चोरी करने के कोई चारा न था। फिर भी हमारे शराबघर में उसका व्यवहार आदर्श था। अपने कर्ज का भुगतान करने में वह कभी नहीं चूका। कभी–कभी उसके हाथ

में पैसा नहीं होता था, तब उसका नाम कर्जदारों की सूची में बोर्ड पर लगा दिया जाता था। पर महीने भर से कम में ही हिसाब साफ कर देता था और उसका नाम बोर्ड पर से हटा दिया जाता था।

आधा प्याला शराब पी लेने के बाद कुंग का दिमाग ठीक हो जाता था। लेकिन तभी कोई पूछ बैठता था, ''कुंग, क्या तुम सचमुच पढ़ना–लिखना जानते हो?'' तब कुंग इस प्रकार देखता था, मानो इस प्रकार का सवाल उसका तिरस्कार करने के लिए पूछा गया हो। वे आगे कहते थे, ''यह क्या बात है कि तुमने सबसे मामूली सरकारी इम्तहान भी पास नहीं किया?''

इस प्रश्न को सुनकर कुंग बेचैन हो उठता। उसका चेहरा जर्द पड़ जाता और उसके होंठ कांपने लगते, लेकिन उसके मुंह से समझ में न आने योग्य पुराने कथन ही निकलते। लोग खिलखिलाकर हंसने लगते और सारा शराबघर आनंदित हो जाता।

ऐसे समय में मैं भी उसी हंसी में शामिल हो जाता, क्योंकि ऐसा करने के लिए मेरा मालिक मुझे फटकारता नहीं था। दरअसल वह स्वयं कुंग से ऐसे सवाल करता, जिससे हंसी फूट पड़े।

यह जानते हुए कि बच्चों से बात करने से कोई फयदा नहीं है, कुंग हमसे बातें करता। एक बार उसने मुझसे पूछा, ''तुम्हें स्कूल में पढ़ने का मौका मिला है?'' मेरे सिर हिलाने पर उसने कहा, ''अच्छा, मैं तुम्हारी जांच करूँगा। तुम ह्मू–सियांग हा शहर अक्षर कैसे लिखोगे?'

मैनें सोचा, ''मैं एक भिखारी द्वारा अपना इम्तहान क्यों होने दूं।'' इसलिए मैंने मुंह फेर लिया और उसकी उपेक्षा कर दी। कुछ देर प्रतीक्षा करके उसने बड़े प्यार से कहा, ''क्या तुम इसे नहीं लिख सकते हो? मैं तुम्हें बताऊंगा कि कैसे लिख सकते हो? तुम इसे याद रखना। जब तुम्हारी अपनी दुकान होगी तो तुम्हें उसकी जरूरत पड़ेगी।''

मझे बहुत दिनों तक अपनी दुकान होने की आशा नहीं दिखाई देती थी। इसके अलावा हमारा मालिक ह्मू–सियांग फलियों को कभी रोकड़ बही में दर्ज नहीं करता था। उसकी बात से थोड़ा प्रसन्न होकर, फिर भी कुछ खीजकर, मैने जवाब दिया, कौन चाहता है कि आप बढ़ावें? क्या ह्मू अक्षर भारी नहीं है?

कुंग खुश हो गया। उसने अपने हाथ के दो लम्बे नाखूनों से काउण्टर का टिकटिका कर कहा, ''तुम ठीक कहते हो। ह्मू लिखने के सिर्फ चार अलग–अलग तरीके हैं। क्या तुम उन्हें जानते हो?''

मेरा धीरज समाप्त हो चला था। मैंने त्योरी चढ़ाई और वहां से चल पड़ने को हुआ। कुंग ने अपनी उंगली शराब में डूबोई, जिससे काउण्टर पर उन अक्षरों को लिख सके। किन्तु जब उसने मेरी उदासीनता देखी तो एक आह भरी। उसकी आंखों में व्यथा झलक रही थी।

कभी–कभी पास–पड़ोस के बच्चे हंसी सुनकर उस मनोरंजन में भाग लेने आ जाते और कुंग को घेर लेते। तब वह उनमें हर एक को मसाले भरी एक–एक फली देता। उसे खाकर बच्चे भी उसका पीछा न छोड़ते। उनकी निगाहें खाने–पीने की चीजों पर लगी रहतीं। कुंग रकाबियों को अपने हाथ से ढ़केलता और आगे झेककर कहता, ''जाओ, अब कुछ नहीं है।''

इस पर बच्चे शोर मचाते और हंसी की फुहारें छोड़ते चले जाते। इतना मजेदार था कुंग।

पतझड़ के उत्सव से कुछ दिन पहले एक दिन शराबघर का मालिक अपना हिसाब पूरा करने पर जुटा था। अचानक निगाह उठाकर बोला, कुंग बहुत दिनों से नहीं आया, उसकी ओर उन्नीस कैश निकल रहे हैं। मालिक की इस बात से हमें पता लगा कि कुंग को कितने दिनों से नहीं देखा है।

''वह आयेगा कैसे, '' एक ग्राहक ने कहा, ''उस पर इतनी मार पड़ी है कि उसकी टांगे टूट गई हैं।''

''अच्छा!''

''वह चोरी कर रहा था। उसने इस बार बड़ी मूर्खता की कि सूबे के विद्वान मिटिंग के यहां चोरी करने गया, जैसे वह वहां पकड़ा ही नहीं जायेगा।''

''फिर क्या हुआ?''

''होता क्या, उसने लिखकर अपना अपराध कबूल किया, फिर उसकी मरम्मत हुई। बेचारा सारी सारी रात पिटता रहा, जब तक कि उसकी टांगें टूट न गईं।''

''फिर।''

''फिर क्या, टांगें गईं!''

''सो तो ठीक है, उसके बाद क्या हुआ?''

उसके बाद?...कौन जाने, वह चल बसा हो।

उस उत्सव के बाद ज्यों–ज्यों जाड़ा आता गया, हवा ठंडी होती गई। मैं अपना समय अंगीठी के सहारे गुजारता। एक दिन दोपहर बीत जाने पर दुकान खाली थी और मैं आंखें बन्द किये बैठा था कि आवाज आई, ''एक प्याला शराब गरम करो।''

यह सुनकर मेरा मालिक काउण्टर पर आगे झुका और बोला, ''ओहो, कुंग, तुम हो? तुम्हारी तरफ हमारे उन्नीस कैश निकल रहे हैं।''

''उन्हें मैं फिर चुका दूगा।'' बेचैनी से देखते हुए कुंग बोला, ये लो अभी के पैसे, एक प्याला बढ़िया शराब दो।''

मालिक बड़बड़ाया और बोला, ''कुंग, तुम फिर चोरी करने लगे!''

इस बात का जोर से खण्डन करने के बजाय कुंग ने कहा, ''आपने यह भी खूब पूछा! अपना मजाक छोड़ो।''

''मजाक! अगर तुमने चोरी नहीं की तो तुम्हारी टांगें कैसे टूटीं?''

''मैं गिर गया था।'' कुंग ने धीमी आवाज में कहा, ''गिरने से मेरी टांगों में चोट आ गई।'' कुंग की आंखें जैसे मालिक से कह रही थीं कि इस बात को आगे मत बढ़ाओ। अब तक बहुत से लोग इकट्ठे हो गये थे और हंसने लगे थे। मैंने शराब गरम की और उसे दे दी। उसने अपने फटे कोट की जेब से चार कैश निकाले और मेरे हाथ में थमा दिये। मैंने देखा, उसके हाथों में धूल–मिट्टी लगी थी। वह शायद हाथों के बल चलकर आया था। उसने शराब का प्याला खत्म किया और लोगों के हंसी–मजाक के बीच हाथों के सहारे चला गया।

इसके बाद फिर बहुत दिन गुजर गये। कुंग दिखाई नहीं दिया। एक दिन शराबघर के मालिक ने हिसाब देखा तो बोला, ''कुंग के हिसाब में अब उन्नीस कैश पड़े हैं।''

अगले साल एक दूसरा उत्सव आया तो मालिक ने फिर वही बात दोहराई, लेकिन जब पतझड़ का उत्सव आया तो उसने उसकी बाबत कुछ नहीं कहा।

नये साल का आगमन हुआ, पर कुंग को फिर कभी हमने नहीं देखा। शायद उसकी सचमुच मृत्यु हो गई।

प्रस्तुति– प्रतीक्षा, हिंदी विभाग, प्रथम वर्ष

मॉडर्न समाज

– मोनिका

अर्थशास्त्र विभाग, प्रथम वर्ष

कल ही मैंने एक ऐसी घटना देखी, जिसने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया। रोज की तरह, मैं अपने कॉलेज बस में जा रही थी। जैसे कि हर बस रास्ते में हर एक स्टैंड पर रुकती है, यह बस भी एक ऐसे ही स्टैंड पर रूकी। एक आदमी, जो कि काफी बुजुर्ग थे, बस में चढ़ने की कोशिश कर रहे थे। ऊपर से वह बुजुर्ग अपने सपोर्ट के बगैर खड़े भी नहीं हो पा रहे थे। इस कारण से उनकी सारी कोशिशें व्यर्थ हो रही थीं। मेरे साथ के कुछ यात्रियों ने बस में

चढ़ने में मदद की। तभी एक बुजुर्ग ने अपनी वरिष्ठ नागरिक वाली सीट छोड़ी और उस बुजुर्ग को उस पर बैठाया। एक महत्वपूर्ण प्रश्न, जो कि मेरे ख्याल से उस समय सबके दिमाग मे आया, वो यह था कि, "कोई भी संतान अपने बूढ़े माता–पिता को अकेले सफर करने के लिए कैसे छोड़ सकती है ?" न केवल बुजुर्ग, बल्कि एक ऐसे व्यक्ति जो अपने आप खड़े भी नहीं हो सकते, कोई इतना स्वार्थी कैसे हो सकता है? कैसे ? जब किसी ने यह बात उन बुजुर्ग से पूछी तो उन्होंने कहा" मेरे बेटे को दफ्तर में कुछ जरूरी काम था। वह आजकल के बाकी बच्चों जैसा नहीं है जो अपने माता–पिता की कदर नहीं करते"।

क्या वह काम उसके अपने बुजुर्ग पिता से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण था? इस दुःखदायी प्रश्न से आज संपूर्ण समाज जूझ रहा है। यह वर्तमान "मॉडर्न" समाज का वह सच है जो मानवता को पतन की ओर ले जा रहा है। यह नैतिकता एवं मानवता का पतन है जो कि इंसानियत का मूल है। अगर हमारे मूल आदर्श ही खत्म हो रहे हैं तो फिर हममें और रोबोट्स में अंतर ही क्या है। यह आज के समाज का दुखद सच है।

लेकिन, आज भी आशा की एक किरण है। उन लोगों में, जो साथी यात्री की मदद के लिए बढ़ते हैं, हमें इंसानियत के नाते इस परिस्थिति को बदलना होगा और इस पतन को रोकना होगा। आज अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो कल हमें भी इन सब चीजों का सामना करना होगा।

जागो !!

प्रकृति की अठखेलियाँ

– पूर्ति साधवानी, अर्थशास्त्र विभाग, द्वितीय वर्ष

प्रकृति भी कितनी नटखट है–
एक पल में धूप
तो दूसरे में छाँव
एक ओर सूखा
तो दूसरी ओर बाढ़
एक छोर पर वर्षा
तो दूसरी छोर सूरज की किरणें
एक जगह शांति
तो दूसरी तरफ तेज ध्वनि

पर उस धूप का स्थान उतना ही ऊंचा है जितना छांव का। वह धूप उन घरों का उजाला होती है जहाँ मनुष्य के सबसे महत्त्वपूर्ण अविष्कार की पहुँच नहीं, उन पशुओं की आँख की रोशनी होती है जिनका प्रकृति ही जीवन है ।

उन पौधों का आहार होती है जो पेड़ बनकर हमें जीवन देते हैं ।

परन्तु छाँव न हो तो उस व्यस्त किसान को ठंडी हवा का झोंका कहाँ से आए, तमाम गाड़ियों के होने के बावजूद उस राही की रूह को ठंडक कहाँ से मिले जो पैदल हीं रोज धूप में अपनी रोजी कमाता है ।

सूखे का होना भी जरूरी है जैसे कभी–कभी बाढ़ का आना । सूखा न हो तो मनुष्यों को सिखाए कौन कि जल ही जीवन है परन्तु उसमें उस किसान की क्या गलती जिसने अपनी प्यास मार कर खेत को पानी दिया व हमारी भूख मिटाई ।

बाढ़ न आए तो उन बंजर जमीनों और वीरान पड़े जंगलों को पानी कैसे मिले जो उसके आभाव में अपनी जान गंवाते रहते हैं।

मनुष्यों को यह कैसे पता चले कि जो पानी एक पल में उनकी प्यास बुझा सकता है वो दूसरे ही पल में जान भी ले सकता है ।

उस वर्षा का आना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना सूरज की किरणों का होना । वर्षा न हो तो उन फूलों का पुनः जन्म कैसे हो जिन्हें मनुष्य बेरहमी से तोड़ देते हैं, उस मिट्टी की प्यास कैसे बुझे जो घड़े बनकर हमारी प्यास बुझाती है । सूरज की किरणों से ही तो पक्षियों की भोर है, वो किरणे न हो तो सर्दी मे धूप सेंकने कहाँ जाए ।

शांति न हो तो आत्मा और परमात्मा का मिलन कैसे संभव, शांति के अभाव में उस नन्हें बालक के कानों तक माँ की सुरीली लोरी कैसे पहुचे ।

प्रकृति की अठखेलियों को समझना मुश्किल जरूर है मगर असंभव नहीं ।

एक अनोखी प्रश्नोत्तरी

– पूर्ति साधवानी
अर्थशास्त्र विभाग, द्वितीय वर्ष

आज फिर कुछ लिखने की इच्छा जागी है
आने वाला इम्तिहान है, पर आँखों मे नींद सी लगी है

प्रकृति के नटखट खेल मुझे रोज आकर्षित कर जाते हैं
बिन कहे ही एक खूबसूरत कहानी सुना जाते हैं

इस प्रकृति से पूछने को हमने प्रश्नों की सूची तैयार रखी है
वो समझ सकें उन्हें, इसलिए उसकी भाषा में ही लिखी है।

वह हर रोज नयी पहेलियों में अपने उत्तर छुपाकर
लाती है
उन उत्तरों के साथ नए प्रश्न भी छोड़ जाती है ।

फूल कैसे उगता है यह हमने भी जाना समझा है
सुबह होते ही खिल जाए और शाम को मुरझाये , यह
उसे कौन सिखाता है

वर्षा कैसे होती है यह तो हमने भी पढ़ रखा है
पर कड़कते बादलों के पीछे खुशी है या गुस्सा, यह
कौन समझ पाया है।

किसानों द्वारा आत्महत्या : एक दुःखद पक्ष

– मोहम्मद आजम
हिंदी विभाग, द्वितीय वर्ष

भारत में किसानों की आत्महत्या एक बहुत ही गंभीर व दुःखद विषय है । भारत में किसानों की आत्महत्याओं का अभूतपूर्व सिलिसिला जो 1997 में शुरू हुआ था वह रुकने का नाम नहीं ले रहा है । प्रत्येक दिन किसान आत्महत्याओं की खबरें अखबारों में आती रहती हैं। महाराष्ट्र, आँध्रप्रदेश, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश आदि राज्यों से अधिकतम किसान आत्महत्या की खबरें आती रहती हैं । और दिन–प्रतिदिन इनकी संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार औसतन 24 किसान प्रतिदिन आत्महत्या कर रहे हैं । अन्नदाता कहलाये जाने वाले किसानों द्वारा आत्महत्या किया जाना भारतीय कृषि का एक बहुत ही दुःखद पक्ष है ।

आजादी के बाद भारत के किसान गरीब रहे, कर्ज में रहे लेकिन इतना बड़ा संकट कभी नहीं आया कि स्वयं कीटनाशक पीकर अपनी जान दे दें । किसानों की आत्महत्या का तत्कालीन कारण सूखा, बाढ़, खेती की बढती लागत, जनसंख्या उपज का उचित मूल्य न मिलना आदि बताये जाते हैं । पिछले एक दशक के दौरान किसानों की आत्महत्या के हजारों मामले सामने आये हैं ।

अधिकतर किसानों ने कीटनाशक पीकर व कुछ ने फांसी लगाकर अपनी जान दे दी । किसानों पर सबसे अधिक मार बे मौसम बारिश और सूखे से पड़ती है और कई बार दाम गिरने से भी इनकी कमाई पर असर पड़ता है ।

किसानों की बदहाली की एक तस्वीर कुछ दिनों पहले दिल्ली में भी दिखाई दी थी। तमिलनाडु से आए किसानों ने विरोध प्रदर्शन के तरीकों से सबका ध्यान अपनी ओर खींचा ।

भारत में किसान आत्महत्या संगीन मामला बन चुका है। सरकार की तरफ से सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) को दिए गए आकड़ों से साफ जाहिर होता है कि किसान आत्महत्या कितना गंभीर मुद्दा है । सरकार ने यह दावा पेश किया है कि "भारत में हर साल 12 हजार किसान आत्महत्या कर रहे हैं। " सरकार 2013 से किसान आत्महत्या के आँकडे जमा कर रही है । सरकार के मुताबिक हर साल 12000 किसान अपनी जिन्दगी खत्म कर रहे हैं । कर्ज में डूबे और खेती में हो रहे घाटे को किसान बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं । सरकार के अनुसार 2015 में कृषि से जुड़े कुल 12602 लोगों ने आत्महत्या की थी, इसमें 8007 किसान उत्पादक थे जिनकी 4515 लोग कृषि सम्बन्धी श्रमिक तौर पर काम कर रहे थे । 2015 में भारत में कुल 133623 आत्महत्याओं में से 94 प्रतिशत किसान थे ।

2015 में सबसे ज्यादा 6291 किसानों ने महाराष्ट्र में आत्महत्या की जबकि 1569 आत्महत्याओं के साथ कर्नाटक इस मामले में दूसरे स्थान पर है, इसके बाद तेलंगाना 1400, मध्यप्रदेश 1290, छत्तीसगढ़ 954, आँध्रप्रदेश 916 और तमिलनाडु 606 का स्थान आता है । 2014 में आत्महत्या करने वालों किसानों की संख्या 12360 और 2013 में 11772 थी ।

सरकार द्वारा प्रस्तुत की गयी रिपोर्ट के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि वाकई भारत में किसानों की स्थिति दयनीय है जिससे किसानों की आत्महत्या में दिन–प्रतिदिन बढ़ोत्तरी हो रही है जिसे सरकार को रोकने का प्रयास करना चाहिए अन्यथा भविष्य मे लोगों को इसका गंभीर परिणाम भुगतना पड़ सकता है।

आवाम की आवाज

– **सन्नी कुमार**
एम.ए., राजनीति विज्ञान विभाग, द्वितीय वर्ष

मैं पत्रकार तो हूँ नहीं
पर आवाज आवाम की
सरकार तक पहुँचाना चाहता हूँ

सोचता हूँ कि ट्विटर से
हैंडल कर लूँ ,
पर सोचकर फिर मैं रुक जाता हूँ
क्योंकि मैं पत्रकार तो हूँ नहीं
पर आवाम की आवाज,
सरकार तक पहुँचाना चाहता हूँ।

सोचा न फंसू
इस बेरोजगारी के मक्कड़ जाल में
पर सोचकर भी मैं फिर फंस जाता हूँ
क्योंकि मैं पत्रकार तो हूँ नहीं
पर बदलाव चाहता हूँ ।

हुक्के का बढ़ता चलन

– **साँई विश्वकर्मा**
इतिहास विभाग, द्वितीय वर्ष

हुक्के का इस्तेमाल सदियों पहले प्राचीन पर्शिया में होता था। धीरे–धीरे इसका विस्तार हुआ और यह पूर्वी देशों की तरफ बढ़ा। भारत में इसका इस्तेमाल दिल्ली सल्तनत के समय से शुरू हुआ । समय के साथ–साथ यह चलन आम लोगों के बीच पहुंचा । आज दुनिया में हुक्का विभिन्न देशों के लोगों द्वारा इस्तेमाल किया जाता है– जैसे की ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका । आज भारत के नौजवान इस नशे की आदत से ग्रस्त होते जा रहे हैं। (हालांकि कुछ लोगों द्वारा इसे नशे की श्रेणी में नहीं रखा जाता है, चूँकि लोगों को इसकी लत लगती जा रही है इसलिए मैं इसे नशा ही कहूँगा)

साल 2010 में Monitoring the Future Survey नामक संस्था द्वारा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में एक सर्वे किया गया । इस सर्वे में यह पाया गया कि 5 में से एक युवा लड़का तथा 6 में से एक युवा लड़की हुक्के की चपेट में है। भारत में भी हाल कुछ ठीक नहीं है, हमारे देश के भी बहुत से युवा इसकी चपेट में हैं । गुरुग्राम में एस.जी.टी. यूनिवर्सिटी के डिपार्टमेंट ऑफ पब्लिक हेल्थ डेंटिस्ट्री द्वारा एक रिसर्च किया गया । उस रिसर्च का मुख्य उद्देश्य गुरुग्राम के युवाओं के बीच हुक्के के चलन को मापना था । उन्होंने पाया कि हुक्का पीने की शुरुआत लगभग 17 वर्ष की उम्र से हो जाती है । हर दिन हुक्का पीने वाले लोग 37.7 प्रतिशत हैं, 44 प्रतिशत लोग हुक्का अपने मित्रों के साथ अनियमित रूप से पीते हैं। इस रिसर्च में उन्होंने यह पाया कि हुक्का सिगरेट के सामान ही हानिकारक है ।

बात अगर देश की राजधानी दिल्ली की की जाए, तो यहाँ भी हाल कुछ ठीक नहीं है । युवा अपने आप को "आधुनिक" तथा "Cool" दिखाने के लिए हुक्का पीते हैं । दिल्ली विश्वविद्यालय जैसे सम्मानजनक संस्थान के बच्चे भी इस गलत

आदत से बच नहीं सके । अनेक बार तथा कैफे हैं जिनमें दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों को अलग से छूट दी जाती है । इसी से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि युवा इस गलत लत से कितना अधिक ग्रस्त है ।

इस बढ़ते चलन का सबसे बड़ा कारण है लोगों के समक्ष इसकी कम तथा गलत जानकारी होना । अधिकतर युवा यह मानते हैं कि हुक्का पीने से कोई हानि नहीं होती है और इस भ्रान्ति को वह अपने पक्ष की बात समझकर इसके आदी हो जाते हैं। American Lung Association ने यह पाया है कि तम्बाकू तथा हुक्के जिनमें Nicotine तथा Flavouring होती है, गर्म होने के बाद "कार्बन मोनो–ऑक्साइड" तथा मेटल निर्मित करते हैं जिससे कैंसर होने की सम्भावना बेहद बढ़ जाती हैं । Cobb Co तथा Ward KD ने एक संयुक्त जांच की तथा यह पाया कि हुक्का के सेवन करने से फेफड़ों का ब्लैडर तथा ओरल कैंसर होता है । इसी जांच में यह भी पाया गया कि हुक्का में ऐसे कई कण होते हैं जिनसे दिल की समस्या बीमारी हो सकती है। Department of Health and Human Services ने अपने शोध में यह पाया कि ऐसे नवजात शिशु जिनकी माँ हुक्के का सेवन करती हैं या थीं, उनका वजन औसत वजन से लगभग 3 आउंस कम आता है ।

आमतौर पर हुक्के की सिगरेट से तुलना की जाती है या ऐसा माना जाता है कि हुक्का सिगरेट जितना हानिकारक नहीं होता । मगर ऊपर लिखे हुए शोध तथा उनकी जांच में यह पता चलता है कि दोनों हीं चीजों का सेवन हमारे शरीर के लिए हानिकारक है तथा कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी पैदा करता है।

आज जरूरत है इस भ्रान्ति को हटाने की "हुक्का जानलेवा नहीं है"। हमारी सरकार का यह दायित्व है कि वह इस बढ़ते हुक्के के सेवन को रोके । तथा युवाओं को समझाए कि उनकी उम्र इस गलत नशे का शिकार होने की नहीं है, उनके ऊपर बहुत सी जिम्मेदारियां हैं । इस ओर दिल्ली की केजरीवाल सरकार ने कदम उठाया है तथा दिल्ली मे सारे बार तथा कैफे मे हुक्के को बैन कर दिया है । हालाँकि गैर–कानूनी ढंग से अभी भी यह धंधा चल रहा है । सिगरेट की तरह इस चीज का प्रचार भी किया जाए की "हुक्का जानलेवा" है ।

संदर्भ

1. American Lung Association का शोध जो कि एक लेख के रूप में An Emerging Trend Waterpipe Tobacco useß (14 September 2005) में छपा था।
2. SGT University -Department of Public Dentistry के अंतर्गत यह शोध लेख के रूप में छपा था।
3. American Lung Association -Hookah Smoking: A growing threat to public health issue brief
4. संयुक्त रूप से Waterpipe Tobacco Smoking: An emerging health crisis in the united states छपा।
5. U-S- Department of health and human services Preventing Tobacco use among youth and young adults- A report of the surgeon generalß के नाम से प्रकाशित हुआ।

आओ बुनें कहानी....

रिपोर्ट – विशाल स्वरुप ठाकुर

हिंदी विभाग, तृतीय वर्ष

हिंदी साहित्य की वह विधा जो पढने सुनने और लिखने में जितनी लोकप्रिय है उतनी ही मनभावन भी। आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय में हिंदी विभाग द्वारा 28 अगस्त 2017 को 'आओ बुनें कहानी' शीर्षक के साथ कहानी की कार्यशाला रखी गयी। इस कार्यशाला में मुख्य अतिथि हिंदी के प्रख्यात कथाकार डॉ. विवेक मिश्र जी थे। मंच को साझा किया डॉ. श्रीधरम ने जो कि महाविद्यालय के ही हिंदी विभाग में प्राध्यापक हैं।

कार्यक्रम की शुरुआत अतिथि महोदय, प्राचार्य डॉ. ज्ञानतोष झा जी, विभागाध्यक्ष डॉ राजेश जी, डॉ श्रीधरम, डॉ अरविन्द मिश्रा, डॉ रूबी द्वारा दीप प्रज्ज्वलन कर हुई। तत्पश्चात अतिथि सत्कार पुष्प गुच्छ देकर किया गया।

इन औपचारिकताओं के बाद प्राचार्य डॉ ज्ञानतोष कुमार झा सर ने अपना व्याख्यान दिया उन्होंने अतिथि को संबोधित करते हुए अपनी बात रखी और हिंदी विभाग को कहानी पर रखे इस कार्यक्रम के लिए विशेष शुभकामनायें दी।

तत्पश्चात डॉ विवेक मिश्र जी ने व्याख्यान दिया और अपनी कहानी 'ऐ गंगा तुम बहती हो क्यों?' का पाठ किया। व्याख्यान में डॉ मिश्र ने हिंदी कथा साहित्य और हमारे दैनिंदनी में हिंदी का प्रयोग और साहित्य की महत्ता पर विशेष बल दिया। डॉ विवेक मिश्र का व्याख्यान इतना मनभावन होता है कि सुनने वाला मंत्रमुग्ध होने से नहीं बच पाता। और हुआ भी यही, एक एक विद्यार्थी उनको सुन रहा था और पता ही नहीं लगा कि कब सभागार में बच्चों की गिनती चालीस से बढ़कर अस्सी तक पहुँच गयी। हिंदी साहित्य और समाज की पूर्वपीठिका रखने के बाद उन्होंने अपनी कहानी का पाठ प्रारंभ किया। उस पंद्रह मिनट की कहानी में एक भी छात्र बीच में उठकर नहीं जा पाया, कारण था उस कहानी का भाव सौन्दर्य और शिल्प सौन्दर्य जो कि अद्वितीय था।

कहानी में प्रतिभा और रणवीर की जिंदगी के उस पहलू का वर्णन था जिसमे उन्हें अपने बड़ों के आशीर्वाद को लेकर एक नयी जिंदगी शुरू करनी थी लेकिन, जाति व्यवस्था, वर्ण, गोत्र, दलित आदि व्यवस्थाओं के चलते उन्हें घर में कोई नहीं अपनाता शिवाय रणवीर के पिता हृदयनाथ सिंह के। रणवीर के पिता भी बहुत कोशिश करते हैं अपने बेटे को अपने पास बुलाने की लेकिन परम्पराओं में उलझे परिवार को वे मना ना सके और एक दिन संसार से विदा लेकर चल बसे। कहानी में रणवीर औए प्रतिभा अपने बेटे के साथ बनारस के उस घाट पर आते हैं जहाँ हृदयनाथ सिंह का अंतिम संस्कार होना है। वहां प्रतिभा देखती है कि पैरों को शरीर के साथ नहीं जलाया जा रहा है और पंडित यह कहकर मन्त्रो का उच्चारण तेज का देता है कि पाँव शुद्र हैं उन्हें धड और बाजुओं के साथ नहीं जलाया जा सकता। जीवन की आगे की यात्रा में पैरों का कोई काम नहीं है। प्रतिभा यह सब देखकर हतप्रभ रह जाती है। गंगा को देखकर अचानक एक गीत याद आता है – ऐ गंगा तुम बहती हो क्यों? कहानी समाप्त होने पर सम्पूर्ण सभागार तालियों की गडगडाहट से गूँज उठा जो कि काफी देर तक गूंजता ही रहा और तालियाँ थी कि थमने का नाम नहीं ले रही थीं।

तत्पश्चात डॉ श्रीधरम ने अपना व्याख्यान दिया और डॉ मिश्र की कहानी पर टिपण्णी की। डॉ श्रीधरम के अनुसार 'ऐ गंगा तुम बहती हो क्यों' अम्बेडकरवादी कहानी है जो कि दलित विमर्श और स्त्री विमर्श से कहीं ऊपर है। डॉ श्रीधरम ने कहानी को पितृसत्ता से जोड़कर सामने रखा तो दूसरी ओर सामाजिक कुरीतियों के कभी ना खत्म होने वाले यथार्थ से भी जोड़कर देखा। डॉ श्रीधरम द्वारा रखे गये हर पहलु पर कहानी एक सफल कहानी के रूप में सामने आती दिखाई देती है।

कार्यशाला में डॉ. मिश्र ने छात्रों से कहानी लिखने की कला पर बात रखी और वार्तालाप किया। साहित्यिक से कहीं अधिक व्यवहारिक ज्ञान के सम्बन्ध में बात हुई। डॉ मिश्र मानते हैं कि जब तक व्यवहारिक तौर पर हम नहीं कुछ सीखेंगे तब तक साहित्यिक ज्ञान का कोई औचित्य नहीं है।

आज के दौर में युवाओं पर बात की गयी कि किस तरह आज का युवा पथभ्रष्ट होता जा रहा है और अपने माँ बाप को कुछ नहीं समझ रहा है। उनके अनुसार दुनिया का सबसे बेहतर ज्ञान और मार्गदर्शन हमें अपने माता–पिता से ही मिल सकता है लेकिन हम उन्ही से दूर भागते हैं। यही जनरेशन गैप हमें बर्बाद कर रहा है।

मोबाइल के इस्तेमाल के सम्बन्ध में, हमारे मित्र संबंधो के बारे में भी बाते हुईं। बच्चों की ओर से भी प्रश्न हुए। जिसमें बच्चों ने कहानी, साहित्य, समाज को लेकर अनेक प्रश्न किये और डॉ मिश्र ने सभी प्रश्नों के तर्क सहित उत्तर भी दिए। जिनमे साहित्य की समझ को लेकर बातें हुईं तो यह भी बात हुई कि हम अपनी पढने की क्षमता को कैसे बढ़ाएं।, पढने के लिए सही साहित्य की समझ तथा दूसरी ओर सही साहित्य लिखने के लिए सही शीर्षकों के चुनाव पर भी बात हुई।

डॉ मिश्र ने बच्चों को फेसबुक और व्हाट्सप्प के ज्ञान से दूर रहने की सख्त हिदायत दी और उम्मीद जताई कि हम छात्र अपने हिंदी साहित्य के उद्धारक बनकर उभरेंगे और जिस भी क्षेत्र में जायेंगे वहां अच्छा ही करेंगे।

डॉ मिश्र के वक्तव्य के बाद कार्यक्रम के मुख्य संयोजक डॉ अरविन्द मिश्रा जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया और साथ ही प्राध्यापिका डॉ आशा पाण्डेय जी ने कार्यक्रम की सफलता पर अपनी बात रखी और सभी को शुभकामनायें भी दी। कार्यक्रम का संचालन तृतीय वर्ष (हिन्दी विभाग) के छात्र विशाल स्वरूप ठाकुर ने किया।

लोक नाटक : नये सन्दर्भ

विशाल स्वरुप ठाकुर व अलोक कुमार वर्मा
हिंदी विभागए तृतीय वर्ष

पिछले कुछ समय में रंगमंच के क्षेत्र में अनेकों बदलाव हुए हैं और साथ ही रंगमंच की एक नयी धारणा विकसित हुई है। जो रंगमंच गाँवों कस्बों का हुआ करता था वह भी औपनिवेशीकरण के चपेट में आकर धन अर्जन का एक बड़ा सेक्टर बन गया और फिर यह खुले वातावरण से एक बंद साउंडप्रूफ हॉल में आ गया, जिसे अमूमन न हम रंगमंचीय सभागार के रूप में जानते हैं। और इसी के फलस्वरूप नये नाटकों और नई विधाओं का सृजन होने लगा और हमारा लोक कहीं पीछे घूटता गया। इसे लोक नाट्य का पतन कहें या उसमें बदलाव कि वह न होकर भी किसी न किसी रूप में घटित या मंचित हो ही रहा है।

हम दूसरे देशों की लोक परम्पराओं से अधिक जुड़ गये और अपने लोक से कटने लगे। और इसी के चलते हुआ यह कि हम अपने स्वांग, जात्रा, नौटंकी से अधिक पश्चिमी नाटकों को देखने लगे और उन्ही के आधार पर हिंदी नाटक रचे जाने लगे। और उसकी महत्ता इसलिए भी अधिक हो गयी क्योंकि उसका टिकेट लेना पड़ता था और हमारे भारतीय समाज की मानसिकता के अनुसार हमारा फ्री ओपन थिएटर कम प्रभावशाली हो गया और पश्चिमी अधिक।

लेकिन लोक परम्पराओं के साथ एक सकारात्मक बात यह भी है कि वह हमारे जीने मरने, सुख – दुःख, व्रत त्योहारों का हिस्सा है। और जहाँ तक बात ग्रामीण समाज की है तो वहां लोक परंपराए आज भी अमर है।

सुरेश अवस्थी जी लिखते हैं – ''लोक नाटक प्रत्येक देश की पारम्परिक संस्कृति का अत्यंत समृद्ध अंग होता है। नृत्य और संगीत की ही भांति लोक साहित्य की इस शाखा में भी संस्कृति की वास्तविक झांकी मिलती है....

हमारा लोकनाटय साहित्य एक ओर तो क्षेत्रीय और जातीय विशेषताओं की दृष्टि से, और दूसरी ओर कलात्मक उपलब्धि की दृष्टि से, अत्यंत समृद्ध है।''1

हमारे लोक नाटक प्राचीन और समृद्ध हैं। नाट्य के अनेक रूप जैसे स्वांग, नौटंकी, ख्याल, माच, जात्रा, अल्कप, आदि हमारे लोक रंग के परिचायक हैं। तो वहीं नाच (बिदेसिया) लोक में एक नया प्रयोग है। मैं समझता हूँ कि वे ही लोक लम्बे समय से हैं और लम्बे समय तक रहेंगे जिनमे ईश्वरीय भक्ति, गाथा, भजन आदि का समावेश है।

''लोक संस्कृति का जीवन काल उनके इश्वरीकरण पर निर्भर करता है।'' अर्थात जिन लोक परम्पराओं के अख्याताओं, प्रवर्तकों को लोक समाज ईश्वर के समकक्ष मानने लगता है वही समाज फिर उनका अनुकरण कर उनकी जीवन शैली को अपना कर उसका प्रचार प्रसार करता है और उनके जीवन व्यवहार को लोक परम्पराओं का स्वरुप प्रदान करता है।

इसी कारण नाच जो कि बिहार के लोक रंग का अंग है वह अभी पहचान को बना ही रहा है और रामलीला, रासलीला आदि स्थापित लोक संस्कृति के रूप में हमारे सामने हैं।

यदि श्रीकृष्ण भगवान् ना होते तो रासलीला इतनी समृद्ध न होती। हमारे समाज को आम व्यक्ति के बारे में जानने समझने की उत्सुकता नहीं है।

''पहले हमारे लोक नाट्यों की विशेषता यह थी कि वह उत्सव की तरह होता था। समाज के लोग अलग–अलग अपनी अपनी भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे होते थे। मंच के आसपास पूरा बाजार लग जाया करता था। फेरीवाले, फूल माला, और मिष्ठान आदि बेचने वाले इक्कट्ठा हो जाते थे। लेकिन वर्तमान में रंगमंच सामाजिक न रहकर व्यक्तिवादी हो गया है। पूरे समूह के साथ देखने के बावजूद भी व्यक्ति अकेला ही है। इसमें एक कारण यह भी है कि 1950 के बाद जो कहानी या नाटक रचे गये हैं वे व्यक्तिवाद को बढ़ावा देते प्रतीत हो रहे हैं। गाँव की कहानियाँ 1950 के बाद कम लिखी गयी हैं और शहर की अधिक, जिसमे बिखरे परिवार, अकेलापन आदि अधिक प्रकाश में आया है। जिसका सीधा प्रभाव रंगमंच पर भी पड़ा है।''

एक बात यह भी कि जो आज का युवा वर्ग है उसकी जिजीविषा और उसकी आवश्यकताएं बदली हैं, वह अब भजन

कीर्तन नहीं बल्कि अंग्रेजी और स्पेनिश के गानों और हॉलीवुड से अधिक प्रभावित है। युवा वर्ग का परिवार से भिन्न होना ही परम्पराओं से अलग होना है। परिवार ही परम्परा है। जो कुछ सीखा जाना है उसकी शुरुआत परिवार से ही होनी है।

भारतीय नाट्य परम्परा में जो सर्वप्रथम आधुनिक प्रयोग हुआ था वह भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने किया। उन्होंने लोक नाटक से हटकर साहित्यिक नाटक लिखे । जिनमें इतिहास का वर्णन नहीं बल्कि वर्तमान की आकांक्षाएं थी। लेकिन इन सब नाटकों ने लोक से ही बहुत कुछ ग्रहण किया है। जैसे कि हिंदी उर्दू का पहला नाटक 'इन्दरसभा' लोक की लीलाशैली अपनाई। भारतेंदु के नाटक अंधेर नगरी भी लोक की परिधि में आता है।

आधुनिक नाटकों के आने पर लोक बिलकुल लुप्त हो गया ऐसा नहीं है। दोनों अपनी जगह बने रहे हैं सिर्फ कुछ उतार–चढ़ाव आये हैं जो जरुरी भी है।

डॉ नगेन्द्र लिखते हैं – ''हिंदी लोकनाटकों के अध्ययन की परिस्थिति अत्यंत असंतोषजनक है। साहित्य के इतिहासों और नाटक के समीक्षात्मक अध्ययनों में उसे कोई स्थान नहीं मिलता।''2

यह यह चिंता का विषय है कि लोक नाटक की अवनति हो रही है, और इनकी शुद्धता और प्रमाणिकता पर प्रश्न उठाये जा रहे हैं। अतीत का नाट्यवैभव लुप्त हो रहा है।3

डॉ देवेन्द्र शर्मा अपने व्याख्यान में कहते हैं कि अपने लोक को बचाए रखने के लिए अपने लोक की इज्जत करनी होगी। हमें अपने पुराने नाट्यों को समझना होगा जानना होगा। हमारी परम्पराएँ बहुत समृद्ध रही हैं लेकिन उनकी अवनति किसी और ने नहीं बल्कि हमने खुद की है। हम अपनी परम्पराओं को आगे नहीं ले जा रहे हैं। हम पश्चिम का अनुकरण करने में लगे हुए हैं। आवश्यकता है कि हम खुद को पहचाने और अपने लोक नाट्यों को दुनिया के सामने लाए। 4

जैनेन्द्र कुमार 'दोस्त' जो कि नाच मंडली के कलाकार और शोधकर्ता हैं कहते हैं कि लोक संस्कृति हमारी पहचान बताती है। नाच लोकनाट्य विधा में भिखारी ठाकुर ने अपने समय की वास्तविकता को पिरोया और जनता के सम्मुख पेश किया। घर से दूर जाते व्यक्तियों की कहानी का मंचन किया, बाल विवाह का विरोध और स्त्री शिक्षा पर जोर देने में नाच ने अहम् भूमिका निभाई।

1– डॉ सुरेश अवस्थी, हे सामाजिक, प्रकाशन वर्ष 2000, प्रकाशक – राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

2– डॉ नगेन्द्र, भारतीय नाट्य साहित्य, प्रकाशन वर्ष 1956, प्रकाशक – आत्माराम एंड संस

सरहद

– दीपक तेंगुरिया

सरहदें लहू से रंगीन हैं,
कैसे मनाएँ उत्सवों को, जब आँखें ही गमगीन है,
गीता पढो या कुरान दोनों की नजर से,
नफरत फैलाने का जुर्म संगीन है,
दिमाग में मानवता, दिलों में प्रेम और,
देश में जब अमन–चैन हो वहीं दिन उत्सवों से ज्यादा बेहतरीन है!!

रणवेदी पर बांकुरे, अब तो सिंहों सा हुंकार भरो,
मातृभूमि की खातिर अपना सब कुछ तो त्याग करो,
लहरा के तिरंगा, शत्रु की जमी पर जय भारत आलाप करो,
संस्कृति का परचम कुछ यूँ फहराएँ कि जो दगा दे हमें वो भी फिर पश्चाताप करे,
प्रलयंकर हो! इतना देशहित के लिए कि शत्रु फिर अपनी खैरियत के लिए महाकाल का जाप करे,

रणवेदी पर बाँकुरो, अब तो सिंहों सा हुंकार भरो!!

सरसराते पत्तों से निकली हवा की छुवन,
अहा! उल्लास में हूं मैं त्रिभुवन,
घटाएँ निराली, छाई खुशहाली,
मन में फूटे प्रेम अंकुर,
हर प्रसन्न चित्त में है कहीं फिर भी उदासी,
बरसते मेघों के हेर–फेर में कुछ जानें सोएंगी आज,
बिना छत, पेट खाली!!

मत करो बयानों की तीरंदाजी यहाँ, अब शहीदों की शहादत पर,,
झुक नहीं सकते गर, शहादत के चूल्हे पर सियासी रोटी पकाना छोड़ दो, ऐ! मुल्क के हुक्मरानों,
देख ली हमने तुम्हारी, जो कारगुजारी थी,
वतनपरस्ती को निभाकर वो गये, उनकी असली कुर्बानी पे तुम,
नकली अश्कों को बहाना छोड़ दो!!

ऐ! मुल्क के हुक्मरानों
शिंकजा कस नहीं सकते जो तुम अपने ख्यालों पर,
औकात क्या कि कशीदे पढ सको औरत के लिबासों पर,
पलट कर देख लो पन्ने जरा इतिहास के,
ये है भारत की वो सरजमीं,
जहाँ कभी नहीं रही राधा पर्दानशीं!

जो कुछ है, बस आज है

अक्षय
अंग्रेजी विभाग, प्रथम वर्ष

जो कुछ है, बस आज है
मरुस्थल पर कदम रखा,
तेज तू न भाग सका,
तेरे जीवन का ताज है,
जो कुछ है, बस आज है।

उस स्वप्न के स्वप्न देखता,
जब काँटों पर कदम न रखता,
मुश्किल–सा एक काज है,
जो कुछ है, बस आज है।

मर्यादा के छल–जालों का,
तंग साँसों की उन डालों का,
तुझे जकड़ता साज है,
जो कुछ है, बस आज है।

निज–अतीत के फेरे पर,
अँधियारे के इस डेरे पर,
उजली–सी एक गाज है,
जो कुछ है, बस आज है।

आँसू एक सच्चाई है,
तुझसे वाकिफ हो पाई है,
दरिद्रता की लाज है,
जो कुछ है, बस आज है।

तेरे इस अस्तित्व–वन में,
निराशा की कंपकंपन में,
'अक्षय' नहीं दुःख राज है,
जो कुछ है, बस आज है।

हरीश चौधरी के कुछ मुक्तक

1 – बोओगे नहीं तो खाओगे कहाँ से,
बिना मार्ग मंजिल तक जाओगे कहाँ से,
आज नाखुश हो बेटी के नाम मात्र से,
तो महाशय कल बहू लाओगे कहाँ से!

2 – अभी तो जिंदगी जीने में काफी उमंग है!
या कहु शान से जिंदगी जीने का ही ढंग है!
है जिंदगी एक गुलदस्ते की तरह जब सब संग है!
नही तो ये स्वर्ग जैसी जिंदगी भी क्या नरक से कम है।

3 – इस कसमकस भरी जिंदगी में कभी वो चाहत हमारी थी,
किस से ना जाने उन्होंने ठुकराई मोहब्बत हमारी थी ,
उस पल से ही त्याग दिया हमने भी ख्याल उनका,
उस पड़ाव में अब स्वाभिमान बचाने की बारी हमारी थी।।

4 – खुदा ने भी क्या ये अंधकार व्यापित माहौल बना दिया ,
जिंदा थे परिंदे जो एक दूसरे के लिए उनको ही आपस में लड़ा दिया ,
क्या रही थी कसर जो जुदाई नाम का हथियार बना दिया ,
खुदा करेगा कैसे तुझे भी तेरा खुदा मांफ तूने एक जीते जागते स्वर्ग को नरक का द्वार बना दिया।।

5 – माँ न होती तो कहाँ ये संसार होता।
रिश्ते में रिश्ता नहीं मात्र व्यापार होता।।
भावनाओ पर किसी को न ऐतबार होता।
दिनकर भले देता प्रकाश माँ बिन दूर न अंधकार होता।।

6 – ऐ बेहया रखी नहीं तूने भी कोई कसर हमारा दिल नोचने में!
ये मन भी जरा लापरवाह निकला तुम्हारी तरह सोचने में!
ये तो जरा विवश थे हम मोहब्बत की लाज बचाने में!
वरना संकोच नहीं करते तुम जैसों के अरमानों से खेल जाने में।।

।।दो सुई उस प्रकाल के।।

– शुभांगी अंग्रेजी विभाग

हवा चल रही थी, तारे बोल रहे थे,
चंदा मे किसी का चेहरा था
और दिल मे कुछ पल सुनहरा था ।
बेमतलब ये खुद को तुमसे मिलाते है,
ये जहाँ, हर पल तुम्हारी याद दिलाते हैं ।
माना कि ये लफ्ज़ बयान नही करती,
पर दिल नही डरता, धड़कनें हमेशा बातें करती।
हर पल मुझे अपने पास महसूस करते हो,
फिर मुझे खोने से क्यों डरते हो?
हालातों के सामने मेरा डर नही चीखता,
तुम्हारे विश्वास के सामने कोई मुसीबत नहीं टिकता।
क्या हुआ अगर तुम चाँद और मै चाँदनी नहीं,
क्या हुआ अगर तुम राग और मैं रागिनी नहीं।
हम जवाब हैं एक–दूसरे के हर सवाल के,
हम दो सूई हैं उस प्रकाल के।

जहाँ चाह नहीं पर प्यार ज्यादा है,
पास नहीं पर साथ रहने का हमेशा वादा है ।
चाहे कितने भी दूर हों, साथ नहीं टूटेगा,
तेरी कल्पना से मेरा हाथ नहीं छूटेगा।
मेरा दिल दुखा तो तुम्हारे धड़कन को बढ़ा दिया,
खुदा ने ये कैसा प्रेम बना दिया ।
एक सूई टूट गई तो दूसरी का कोई काम नहीं,
अगर तुम साथ नहीं तो मेरा भी कोई नाम नहीं।
बादल अगर आज गरज रहे हैं तो कल बरसेंगे,
दिल मिलने को आज तरस रहे तो कल भी तरसेंगे।
पर हाँ हम जवाब हैं एक–दूसरे के हर सवाल के,
हम दो सूई हैं उस प्रकाल के ।

'पदमावती . एक विवाद'

सोनू

पद्मावती आई तो थी मनोरंजन के लिए, मगर उसे क्या पता था कि उसके आने से यहां के लोगों की भावनाएं आहत होंगी । ठेस भी क्या बला है कि जब चाहो, तभी लगती है । वरना इतिहास के पन्नों में दबी, धूल में सनी पदमावती कहां पड़ी थी, किसे पता था ? किसी ने इससे पहले उसका जिक्र तक किया था ? जायसी की रचनाओं और राजस्थान के इतिहास से उपजी पदमावती ने जैसे आज के मुख्य मुद्दों शिक्षा , रोजगार , भुखमरी जैसे सभी मुद्दों को पीछे छोड़ दिया । हमारे बीच आज भी कई पदमावती हैं, जो अपनी अस्मिता के लिए चीख – चिल्ला रही हैं। तब हमें कोई ठेस नहीं पहुंचती । महिलाओं के भोंडे विज्ञापनों से भी हमारी भावना आहत नहीं होती । रोज होते बलात्कार , हत्या जैसे क्राइम देख कर भी हमारी भावना आहत नहीं होती । इस देश को बस हर मुद्दे पर नुकसान पहुंचने की बात होती है। तोड़फोड़ करना, गाड़ी जलाना कभी आरक्षण के नाम पर तो कभी किसी नाम पर। कोई भी देश की समस्या कैसे हल हो उसके बारे में नहीं सोचेगा , उसके लिए सिर्फ और सिर्फ सरकार बैठी है और सरकार भी सिर्फ वही काम करेगी जो उसके हिसाब से ठीक होगा। आखिर क्यों ?

हल्ला तो तब होता है , जब 'तमाशे ' पर सियासत से लेकर सरकार तक की भौंहें तन जाती हैं । इससे पहले कि इतिहास से छेड़छाड़ हो, हे पदमावती तुम लौट जाओ । तुम्हारी नाक कटे ना कटे हमारी जरूर कट जाएगी ।

इस देश में आज भी लाखों लोग भूखे सोते हैं क्या ये जो संगठन जाति के नाम पर ठेकेदार बने हुए हैं जो केवल नाक काटने के लिए 1 करोड़ तक देने के लिए तैयार बैठे हैं या जो तोड़फोड़ करके शहर में बंद बुलवाते हैं वो बताएंगे कि उन्होंने कितने भूखे पेटों को भोजन उपलब्ध करवाया । उनका जवाब होगा किसी को नहीं और अगर करवाया भी होगा तो सिर्फ और सिर्फ पब्लिसिटी के लिए । हमारे देश की सबसे बड़ी दिक्कत ही यही है कि सब बस ठेकेदार बनना चाहते हैं कोई मददगार नहीं बनना चाहता । अगर इसी पदमावती से इतना ऐतराज है तो इसका हल बातचीत करके सामान्य रूप से सुलझाया जा सकता था लेकिन हमारे देश के ठेकेदारों की समस्या ही है कि जब तक किसी चीज का मीडिया में इश्यू ना बने उसके ऊपर बवाल ना हो तब तक वो समस्या का समाधान ही नहीं ढूंढेगा कोई । आज भी बहुत महिलाएं किसी ना किसी सामाजिक आर्थिक समस्या से ग्रसित हैं लेकिन उनकी मदद के लिए कोई तैयार नहीं होगा क्योंकि तब मर्द की बेज्जती होने का डर होगा । दिल्ली में हुई 16 दिसंबर की घटना के समय सबने महिला सुरक्षा की खूब बात की पर उसके बाद क्या हुआ ? सिस्टम ठप ? फिर वही सब होने लगा जो पहले होता था । इस देश के लोग तभी क्यों जागते हैं जब कुछ गलत हो जाता है ?

अब एक रोचक बात और बताता हूं हमारे देश का इतिहास तभी हमें याद आता है जब उस पर बवाल होता है और सबसे मजे की बात जो लोग इसके विरोध में बोलते नजर आते हैं उनको इतिहास तक नहीं पता होता वो बेचारे खुद गूगल बाबा के सहारे ज्ञानी बने होते हैं।

आज एक प्रश्न करता हूं क्यों ना हम गरीबी दूर करने के लिए आंदोलन करें ?
क्यों ना हम महिलाओं की सुरक्षा के लिए समाज को तैयार करें ?
क्यों ना हर छात्र को पढ़ने का हक दें आर्थिक या किसी भी रूप से ?
क्यों ना ग्रामीण क्षेत्रों में होते अंधविश्वसों के खिलाफ आवाज बुलंद करें ?
क्यों ना हम हर इंसान को 2 वक्त की रोटी दिलाने का प्रयास करें ?
और सबसे बड़ी बात क्यों ना हम सबको ये अहसास दिलवाएं कि हम सब इंसान हैं, कोई छोटा या बड़ा नही है।

हर संगठन और समाज से विनती करता हूँ कि बस बहुत हुआ तोड़फोड़, धमकी, अब आओ मिलकर देश बनाए। आप जिस भी समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं वहाँ की समस्या सुलझाने में देश की मदद कीजिए। बच्चों को शिक्षा, महिलाओं को सम्मान, भूखे को रोटी, बेसहारा को सहारा दीजिए और तब उनको अपना इतिहास बताइए।

लोकरंग मंच के बदलते सरोकार

शिल्पा ध्यानी व विशाल स्वरुप ठाकुर

लोक रंगमंच – लोक शब्द सुनकर ग्रामीण परिवेश झलकता है तो रंगमंच शब्द सुनकर नाट्य प्रस्तुति का धुंधला परिदृश्य सामने आता है। मुख्य रूप से लोक रंगमंच में हमारे गाँवों कस्बो की पारंपरिक कहानियाँ किस्से ही तो निहित हैं। 'लोक' को ग्रामीण लोगों से जोड़कर देखा जाता है। लोकनाटक प्रत्येक देश की पारम्परिक संस्कृति का अत्यंत समृद्ध अंग होता है। भारत में भिन्नता हर क्षेत्र में पाई जाती हैं , फिर चाहे वह सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो, आर्थिक हो और चाहे साहित्यिक ही क्यों न हो। लेकिन अहम बात तो यह है कि अनेकता में एकता ही हमारी अमिट पहचान है और यही कारण है कि हमारा लोक रंगमंच भी एक सा नहीं रह पाया। बदलते समय के साथ साथ हमारे लोक में भी बदलाव आता गया चाहे वह नाट्य हों या लोक संगीत। बदलाव का अर्थ उनकी प्रस्तुति के स्थान परिवर्तन और भाषागत परिवर्तन के संदर्भ में है।

ग्रामीण परिवेश में अलग तरह की पवित्रता समाहित होती है। लेकिन जैसे –जैसे समय आगे बढ़ता जा रहा है, ग्रामीण परिवेश अपनी अस्मिता एवं अहमियत खोता जा रहा है। लोग अपने गावों को छोड़कर शहरों की ओर पलायन करते जा हैं वही शहर भी गाँवों की छाती पर चढ़ा आ रहा है। वास्तव में यह एक दुखद संक्रमण है। ऐसा क्या किया जाए कि लोगों अपनी संस्कृति की ओर थोड़ा अधिक ध्यान दें तथा जानें समझें व अपने जीवन से अलग न आँकें बल्कि अपने जीवन का एक अहम हिस्सा मान कर आगे बढ़ें। वर्तमान समय में , ऐसी चिंता को लेकर भिन्न –भिन्न कदम उठाये जा रहें हैं। लोक रंगमंच साहित्य का ही एक हिस्सा है। लेकिन जब नाट्य की बात आती है तो लेखक और पाठक दोनों ही आलसी हो जाते हैं। इसी कारण नाट्य रचनाएँ या उन पर चर्चा बहुत कम सामने आती है। यह बहुत हैरानी की बात है कि युवा पीढ़ी का आकर्षण संस्कृति में नहीं है। भारत की भावी पीढ़ी अपनी उसी संस्कृति को अनदेखा कर रही है जिसे दुनिया भर के लोग महान संस्कृति के नाम से जानते हैं। भारत की संस्कृति वास्तव में ही महान है पर चिंता की बात यह है कि भारतीय ही इसकी अहमियत सही तरह से नहीं आंक रहें है। ऐसी कई विधियाँ हैं जिनकी मदद से हम अपनी संस्कृति को अपने साथ रख कर आगे बढ़ सकते हैं। आदिकाल से वर्तमान समय तक अनेकों विधाओं का सृजन हुआ है और सभी परिस्थिति के अनुसार हुए हैं। लोक नाट्य में भी जो वर्तमान संदर्भो में परिवर्तन हुए हैं उसमें सबसे मुख्य फिल्मों का निर्माण शुरू होने से हुआ। जिसके चलते जो हमारी कहानी किस्से थे वे चलचित्र के माध्यम से उन स्थानों पर भी पहुँच गये जहाँ के वे थे ही नहीं। उत्तर भारत की कहानियां दक्षिण में पढ़ी जाने लगी तो पूर्व की पश्चिम में। फिल्म जगत ने सम्पूर्ण विश्व को समेटने का काम किया। जिसका असर हमारे लोक नाट्यों पर भी पड़ा और धीरे–धीरे हमारी लोक परम्पराएँ हमारे फिल्मी जगत बॉलीवुड का हिस्सा हो गयी। जिसमे सबसे पहले हमारे लोक संगीत गये और फिर लोक नाट्य भी।

हम आज लोक संस्कृति को बॉलीवुड से जोड़कर देखने की कोशिश कर रहे हैं। कि किस प्रकार फिल्मों में लोक साहित्य की विधाओं का अहम योगदान हैं। हम देखते हैं कि फिल्मों में लोक नृत्य,लोक गायन व पहनावा तथा गांवों की साधारण बोलचाल की भाषा का इस्तेमाल होता है। यह प्रयोग वास्तव में फिल्म को एक अलग ही पहचान देता है। ऐसे प्रयोगों से महसूस होता है कि यह फिल्में सम्पूर्ण समाज को जोड़ने का कार्य करती हैं।

उदाहरणतः फिल्मों में लोक संस्कृति का समावेश नजर आता है।देखा जाये तो हर फिल्म में ही 'लोक संस्कृति' से जुड़ी कुछ न कुछ बाते उपस्थित होती हैं। सन 1966 में आई फिल्म ''तीसरी कसम'' में ''सजना बैरी हो गए हमार'' यह गीत बिहार के नाच के विषय से संबंधित हैं जिसका विषय था 'बिदेसिया' इसमें एक स्त्री के अपने पति से अलगाव की स्थिति का विवरण पूर्णतः करूणा के साथ दिया गया है। 'बिदेसिया' को नाच का पर्याय माना जाता है। किन्तु बिदेसिया मात्र एक नाच का विषय है, इसी के साथ–साथ नाच का अनेकों विषयों पर मंचन हुआ है। यह बिहार के लोक रंगमंच का अहम हिस्सा है। सन 1959 में आई फिल्म 'नवरंग' में ''अरे जा रे हट नटखट, न छोड़ मेरा घूँघट''। इस गीत में एक लड़की स्वयं ही स्त्री व पुरुष का किरदार निभा रही है। भारत के 'लोक' में हम पाते हैं की शुरुआती

समय में पुरुष ही स्त्रियों का किरदार रंगमंच में निभाया करते थे। अर्थात् एक ही व्यक्ति दो किरदार निभा रहा है। यहाँ इस गीत में भी कुछ ऐसा ही है। लेकिन स्त्री मुख्य किरदार निभाते हुए नजर आ रही है। यह गीत होली के त्योहारों से संबंधित है। इस गीत में लोक वाद्य यंत्रों का भी प्रयोग होता नजर आ रहा है व गीत की शुरुआत वार्तालाप से है जैसा हम नाटकों में देखते हैं। संजय लीला भंसाली की फिल्म पद्मावती में घूमर नृत्य राजस्थानी लोक संस्कृति का परिचायक है।प्रेम रतन धन पायो फिल्म में रामलीला का आधुनिक मंचन दर्शाया गया है। पीपली लाइव में स्वांग का मंचन होता दिखाया गया है। सन 1957 में आई फिल्म 'मदर इंडिया' बेहद शानदार व करुणामय फिल्म है जिसमे ''होली आई रे कन्हाई'' गीत भारतीय लोकपर्व होली से जुड़ा है। सन 1998 में आई फिल्म ''चाईना टाऊन'' में एक मनोरंजक गीत 'छम्मा–छम्मा' जिसमें 'उर्मिला मातोड़कर' द्वारा राजस्थानी परिधानों में एक सामूहिक नृत्य किया गया है। सन 2001 में आई फिल्म ''लगान'' में हम देखते हैं कि मुख्यतः ग्रामीण परिवेश को अंकित किया गया है। इस फिल्म में अधिकतर किरदार जो भारतीय होने का किरदार निभा रहें हैं। राजस्थानी, गुजराती परिधान पहनें हुए हैं। इस फिल्म में कई गीत हैं जिनसे भारतीय लोक की छवि मिलती हैं ''राधा कैसे न जले'' इस गीत में हम देखते हैं चारों और गाँव वाले बैठे हुए हैं बीच में मुख्य नायक –नायिका तथा अन्य किरदार नृत्य कर रहें हैं।गीत में एक तरह का खींचतान नजर आता हैं तथा लोग गरवा खेलते हुए नजर आ रहे हैं। यह नृत्य, नाटक गीत का मिश्रण है। इस गीत में राधा –कृष्ण का जिक्र किया गया है। मेरे अनुसार रासलीला से संबंधित है। नायक को कृष्ण की भांति इंगित किया गया है। दूसरा गीत ''घनन घनन घन घिर आये बदरा'' इस गीत में गांवों के सभी लोग ग्रमीण परिधानों में दिखायी देते हैं। सन 2004 में आई फिल्म ''स्वदेश'' में एक बहुत प्रिय गीत है 'पल पल है भारी' इस गीत में सीता हरण के बाद, सीता राम को गुहार लगा रही हैं उनकी मदद करने आए। तथा रावण – सीता के मध्य संवाद को गीत–नाटक के मध्य रखा गया । सन 1999 में आई फिल्म ''हम दिल दे चुके सनम'' में लोक संबंधित गीत ''ढोली तारो ढोल बाजे'' इस गीत में सभी किरदार गुजरती– राजस्थानी परिधान पहने हुए हैं। कुछ उदाहरण से स्पष्ट होता है कि हमारे फिल्मी जगत में लोक को स्थान दिया गया है। लेकिन विमर्श का मुख्य बिंदु यह सामने आता है कि क्या यह स्थान पर्याप्त है, क्या लोक को उससे बढ़ावा मिला या लोक परम्पराओं की अस्मिता को ठेस पहुंची है। लोक के फिल्मी जगत में आने से पहले भी हमारा लोक चर्चित एवं सम्मानीय और सराहनीय था। फिल्मों में आने से लोक के ग्रामीण कलाकारों का बहुत नुकसान हुआ यह कहना गलत नहीं होगा। जिन कलाकारों की रोजी रोटी लोक नाट्य व लोक संगीत के माध्यम से चल रही थी वह बंद हो गयी। लोगों ने उनके कार्यक्रमों को छोड़कर सिनेमाघरों की ओर रुख करना शुरू कर दिया। जैसा संध्या शर्मा अपने वक्तव्य में बताती हैं कि हमारे देश में क्लार्नेट बजाने वाले इसलिए खत्म हो गये क्योंकि अब वह आजीविका के लिए पर्याप्त नहीं थी। और ऐसा हर उस विधा के साथ हो रहा है जिसका प्रचलन कम होता जा रहा है। वैश्वीकरण के दौर में हम अपने लोक परिवेश से अधिक बाजार पर निर्भर और आत्ममुग्ध हो गये हैं। हमारे लिए पश्चिमी संस्कृति अपने लोक से अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है। यह चिंता का विषय है कि लोक नाटक की अवनति हो रही है और उसकी शैलियाँ शुद्ध और प्रमाणिक नहीं रही। अतीत का वैभव लुप्त हो रहा है। हमें बदलती हुई सामाजिक दशाओं और नाटक प्रदर्शन की अधिकाधिक विकासमान परिस्थितियों के लिए, कुछ–न–कुछ छूट देनी ही होगी और इन नाट्य रूपों के सामान्य ढाँचे में जो परिवर्तन होगा, उसे स्वीकार करना पड़ेगा।

सन्दर्भ सूची

1 – हिंदी लोक नाटक : परम्परा और नाट्य– रूढ़ियाँ, पुस्तक – हे सामाजिक, डॉ सुरेश अवस्थी। प्रकाशन वर्ष 2000,प्रकाशक – राष्ट्रिय नाट्य विद्यालय

2 – कौशलेन्द्र प्रपन्न द्वारा लिखित लेख, समकालीन भारतीय साहित्य,सितम्बर अक्टूबर, 2017, साहित्य अकादमी प्रकाशन

3 – डॉ संध्या शर्मा के साक्षात्कार से।

4 – डॉ देवेन्द्र शर्मा के व्याख्यान से।

5 – डॉ सुरेश अवस्थी, हे सामाजिक।(पूर्ववत)

डॉ गंगा प्रसाद विमल जी से विशाल स्वरुप ठाकुर की बातचीत

विशाल स्वरुप ठाकुर : अपने जन्म, प्रारंभिक शिक्षा और साहित्य में पदार्पण के बारे में संक्षेप बताएं।

डॉ गंगा प्रसाद विमल : पैदाइश भारतवर्ष के बेहद खूबसूरत क्षेत्र हिमालय के एक छोटे से कस्बे उत्तरकाशी, उत्तराखंड में सन 1939 में हुई। हिमालय की सादगी, विस्तार, निर्मलता, ऊँचाईयों को धारण करने का जज्बा पहाड़ो से मिला है। हिमालय की अनूठी सामाजिक – संस्कृति, परंपरा, सनातनता को बनाये रखने का संस्कार विशिष्ट जीवनशैली में प्रवाहमान है। यही वजह है कि मैंने अपनी तमाम रचनाओं में हिमनदों को बचाने और वनों की कटाई पर रोक लगाने पर जोर दिया है। क्योंकि इनको बचाए रखना ही संस्कृति को बचाये रखना है। इस कोशिश में निरंतर प्रयत्नशील रहा हूँ। शिक्षा गढ़वाल, ऋषिकेश, इलाहाबाद, यमुनानगर एवं पंजाब विश्वविद्यालय जैसी अनेक जगहों पर हुई। जीवन के आरंभिक दौर से ही प्रतिभाशाली और रचनात्मक होने के कारण व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास तमाम साहित्यिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में हुआ। 1963 में ही ''समर स्कूल ऑफ लिंगुइस्टिक्स'', उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में अध्ययन आरंभ किया। सन 1965 में डॉक्टर ऑफ फिलॉसॉफी की डिग्री से सम्मानित किया गया। और इन सब के साथ साहित्य में आना तो स्वाभाविक ही था।

विशाल स्वरुप ठाकुर : आपका जन्म आजादी से पहले का है, आपने आजादी और विभाजन को प्रत्यक्ष रूप से देखा है, उसका दंश या उसका प्रभाव आप पर किस प्रकार से पड़ा?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : जब मुझे बोध हुआ तो वह समय विभाजन का था, उससे पहले विश्वयुद्ध की बाते सुनी थी। विभाजन या कहूँ तो स्वतंत्रता का अवसर था, उसका एक पड़ाव मेरी स्मृति में है, उस दौरान ये हुआ था कि भारत को तो आजादी 1947 में मिल गयी थी किन्तु हमारी गढ़वाल रियासत को आजादी 1948 में मिली। इतना याद है कि उस वक्त क्रान्तिकारी लोग सक्रिय रहते थे, वो हमारे गाँव कस्बो से गुजरते थे, नारे लगाते थे, उन सबसे हम प्रभावित होते थे।

विशाल स्वरुप ठाकुर : आपके परिवार या मित्रों का उसमें क्या योगदान रहा? क्या आप उस दंश को लेखनी में उतार पाए?

गंगा प्रसाद विमल : बहुत योगदान था। सभी क्रांतिकारियों का हमारे घर आना जाना था, और घर से बहुत घना सम्बन्ध था। मेरे पिता रियासत कर्मी थे राजा के लिए काम करते थे, इसलिए खुले रूप से क्रांति नहीं कर सकते थे किंतु हमारे घर में छिपे क्रन्तिकारी बहुत थे। उस दौरान अनेक कष्ट झेले क्रांतिकारियों ने, छुप छुपकर रहना पड़ता था उन्हें और यदि पकड़े जाते थे तो उनसे बहुत बुरा बर्ताव किया जाता था। उनको प्रताड़ित किया जाता था। उनकी जमीनें, पशु आदि छीन लिए जाते थे। उसमे मेरे चाचा, ताऊ, रिश्तेदार आदि शामिल थे। उस समय मैं छोटा था किंतु जब बड़ा हुआ तो सुनता था कि–किस रिश्तेदार के साथ स्वतंत्रता के दौरान क्या हुआ। मेरे पिता क्योंकि सरकारी अफसर थे तो हम पर पाबंदियां भी बहुत थी। एक दौर ऐसा आया कि हमारे घर की तलाशी होने लगी। मैं उस समय मैं बहुत छोटा था किंतु अनेक क्रान्तिकारी मेरे बड़े भाइयों के सहपाठी थे। वे अपने किस्से बड़े नमक–मिर्च लगाकर बताते थे, इसलिए और अधिक जानने की इच्छा रहती थी।

विशाल स्वरुप ठाकुर : आपकी पहली रचना कौन सी थी, किस विधा में थी?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : दुनिया के सभी लोगों की तरह मेरी शुरआत भी कविता से हुई। वे रचनाएं अब तो मेरे पास नहीं हैं लेकिन हो सकता है कि उस दौर की पत्रिकाओं में अब भी हों।

विशाल स्वरुप ठाकुर : समाज और साहित्य कहीं न कहीं अलग–अलग दिशाओं में चल रहा है, इस समय की यह सबसे जटिल समस्या है, इस पर आप क्या कहेंगे?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : जब हम बड़े हुए भारत की दशा अच्छी नहीं थी। हमें बचपन से ही लगता था कि जो भी हो रहा है वह नहीं होना चाहिए था। उस वक्त सभी के पास एक विकल्प था–वह था गांधीवाद। गांधी जी परस्पर सौमनस्य से चीजों को सुलझाना चाहते थे। वो अहिंसा के सहारे काम करना चाहते थे। उनका सबसे कारगर विकल्प

था 'सत्याग्रह'। उस दौर में विश्व के दूसरे हिस्सों में दूसरी धाराएं बह रही थी। आजादी के बाद देश में हवा बदल चुकी थी। अंग्रेज चाहे कैसे भी रहे हों, किन्तु उन्होंने हमें बहुत सी चीजें सिखायीं है यह बात भी स्मृति में रखनी चाहिए।

विशाल स्वरुप ठाकुर : साहित्य और लोक कलाओं के सम्बन्ध के बारे में आप क्या कहेंगे?

डॉ गंग प्रसाद विमल : हमारे लोक में कलाओं की उपस्थिति है। लोक कलाओं और साहित्य का बहुत गहरा संबंध है। यह बात तब मालुम होती है जब लोकोत्सव होता है। सभी तरह के कलाकार एक साथ प्रस्तुति देते हैं। कोई गीत गा रहा है, कोई नृत्य कर रहा है, कोई कविता सुना रहा है, और भी बहुत कुछ। लेकिन अंग्रेजी प्रभाव में हमें जो आधुनिक शिक्षा मिल थी उससे हम सिर्फ साहित्य में सिमट गये। हालाकिं साहित्य कभी अकेला नहीं होता। कई चीजें साहित्य में ही निबद्ध होती हैं। हमारी शिक्षा पद्धति ने हमें अलगाया लेकिन लोक से हम जुड़े रहे।

विशाल स्वरुप ठाकुर : हर लेखक का एक वाक्य होता है ' मैं तब लिखता हूँ जब ... '' मैं पूछना चाहूंगा कि आप कब लिखते हैं, किन मनोभावों और मनोदशाओं में आप लिखने बैठते हैं?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : लिखना आत्माभिव्यक्ति की चेष्टा है। मेरा एक विचार है। उस विचार को लेकर मतभेद होते थे। हमारी मित्रमंडली जो अनेक सुविज्ञ लोगों की थी उसमें सभी विषयों के लोग थे, मुख्य बात यह थी कि हम अपने विचारों को कैसे संगत और तर्कपूर्ण ढंग से रखें। और इसके लिए थोड़ा सा सक्रीय भी होना पड़ता था। अपने ढंग से ऐसा प्रयत्न ऐसा उद्यम करना पड़ता था ताकि लोगो को यह न लगे कि हम झूठ बोल रहे हैं।असल में यह था कि जो हम साहित्यिक कर्म कर रहे थे उससे जुड़ा जो सामाजिक कर्म था उसके प्रति हम पूर्ण रूप से प्रतिबद्ध थे। हमारी वह प्रतिबद्धता राजनीतिक रूप में कम थी। हम लोग भारत को तमाम तरह की कुरीतियों से मुक्त देखना चाहते थे। इसमें बहुत सारे बिंदु उभर कर आते थे। मुझे याद है कि बहुत सारी बहसें होती थी। पश्चिमी साहित्य पढ़ते थे। उस पर बहस करते थे कि इस कवि ने ऐसा क्यों लिखा? इस कवि ने यह क्या लिखा? और यह सब कक्षाओं के बाहर का कार्य था। कक्षाओं में हम एक आज्ञाकारी चेले की तरह बैठे रहते थे। हमारे अंग्रेजी के प्रोफेसर हुआ करते थे। हम उनसे कई बातों पर बहस करते थे। वह हमारे सीनियर थे। उस समय लगता था कि साहित्य हर चीज का जवाब दे सकता है। विश्व भर में जहाँ प्रजातांत्रिक मूल्यों का हनन होता था, उसके विरुद्ध खड़े हो जाते थे। मैं अकेला नहीं था पचासों लोग उसमें मेरे साथ शामिल थे। मुझे याद है कि जब हम कभी उस दौर में पढ़ते थे, उस समय जो बड़े लोग थे उन्हें देखने की इच्छा होती थी–कि वो क्या कहते हैं? क्या सोचते हैं? आपको जानकर खुशी होगी उस दौर में दुनिया में कुछ बड़े लोग आ गए थे। जो दुनिया को बदलना चाहते थे। प्रत्येक राष्ट्र से वे बड़े लोग अपने अपने कामों में लगे हुए थे और हम अपनी तरह से आलोचनात्मक प्रतिकिया करते थे। इसी दौर में दूसरी कई चीजें उभर कर आई थीं। यह एक प्रभावशाली दौर था ।

विशाल : मैं आप से मिलने के लिए उत्सुक रहता हूँ और हिंदी के बड़े साहित्यकारों से मिलने और उनसे बात करने की बड़ी इच्छा रहती है। आप जिस समय बी.ए. में थे तो आपकी उत्सुकता किन से मिलने की रही?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : आप बहुत अच्छे सवाल कर रहे हैं। मैं जब अलाहबाद में रहता था तो मेरी इच्छा निराला जी से मिलने की होती थी। मैं अक्सर उनसे मिलने चला जाता था। मुझे उस दौर में पन्त जी ज्यादा पसंद नहीं आते थे। उनसे मिलने नहीं जाता था। धीरेंद्र वर्मा और रामकुमार वर्मा से मिलने जाया करता था। बच्चन से नहीं मिलना चाहता था क्योकि मुझे बच्चन जी उतना प्रभावित नहीं कर पाए थे। धर्मवीर भारती जी से कई बार मिला। मैं उस दौर में परिमल की गोष्ठियों में जाने लगा था। और जो बड़े लोग थे वो प्रभावित करते थे। मुझे याद है कि जब मैं दिल्ली आया तो मैं ऐसे व्याख्यानों में शामिल होता था जिन व्याख्यानों को बड़े–बड़े लोग दिया करते थे। बाद में उन व्याख्यानों पर गहरी बहसे भी होती थी। इसके साथ ही हिंदी साहित्य की जो अद्यतन कृतियां थी उनके बारे में जानने के लिए उत्सुक था। उसके लिए कलकत्ता जाना जरूरी था। इसलिए मैं कलकत्ता में भी काफी लंबे समय तक रहा। मुझे याद है, मैं चंडीगढ़ से कलकत्ता कई बार गया हूँ। मेरे एक मित्र कलकत्ता में प्रोफेसर हो चुके थे। मैं उनके साथ काफी लंबे समय तक रहा। वह एक ऐसा दौर था जब मुझे बांग्ला सीखने का शौक हुआ और मैं थोड़े दिन में ही बांग्ला सीख गया उसके बाद मैं हैदराबाद की उस्मानिया यूनिवर्सिटी में गया। उस दौर में जो अद्यतन हो रहा था हम उसे सीधे जुड़ रहे थे।

विशाल स्वरुप ठाकुर : आप कविता को किस रूप में देखते थे (जिन कविताओं को आज हम साथ साठोत्तरी या नई कविता के रूप में देख रहे हैं)?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : उस समय में वह कविता विमर्श का एक हिस्सा थी, जैसे अभी हम जिन युवाओं को पढ़ते हैं और ऐसा लगता है कि ये समाज को बदलने की कोशिश् कर रहे हैं। ऐसा ही उस समय की वर्तमान की जो कविताओं को देखकर लगता था कि अभी भी कुछ लोग है जो सारी स्थितियों को अलग नज़रिए से देख रहे हैं। और समाज को उससे परिचित भी करवा रहे हैं।

विशाल स्वरुप ठाकुर : पहाड़ के लोगों की सभ्यता संस्कृति उनके संस्कार को आप किस रूप में देखते हैं? आप दिल्ली आए तो किन संस्कृतियों को बचाने में सफल रहे और किन संस्कृति को बचाने में असफल रहे। ये सभी जानते हैं कि आप भी पहाड़ से ही हैं।

डॉ गंगा प्रसाद विमल : पहाड़ एक अनिवार्य निर्मिति है। वह जैसा बना हुआ है वैसा ही बना रहेगा। हम उसे खंडित नहीं कर सकते क्योंकि प्रकृति को पराजित कर पाना बड़ा ही कठिन काम है। लेकिन यदि अहंकार के रूप में यह कहा जाए कि पहाड़ी बहुत अच्छे होते हैं तो वह थोड़ा सा गलत प्रकार का निर्णय होगा। अभी बहुत से पहाड़ी ऐसे हैं जो सोलहवीं शताब्दी के हिसाब से चल रहे हैं। उनके हिसाब से तो हम अपनी तुलना नहीं कर सकते और न ही उनसे कोई संवाद स्थापित हो सकता है। यह मानना चाहिए कि पहाड़ों में एक साथ कई शताब्दियां रह रही हैं। लेकिन जो खेतिहर मजदूर है पशु चारक है वो अनपढ़ ही तो है। बाकी तो उनमें कोई खामियां नहीं है वे दुनिया के सभी संसाधनों का प्रयोग अन्य लोगों की तरह कर रहे हैं। मैं यह मानता हूँ कि मनुष्य मस्तिष्क चाहे कहीं का भी हो पहाड़ का हो या कहीं और का हो उसमें जो विलक्षण रूप है वह कलाओं के साथ सामने आता है। कहने का यह तात्पर्य है कि पहाड़ में भी उतनी ही कलाएं हैं जितनी अन्यत्र हैं। उसको सीमित नहीं करना चाहिए। संस्कृति के सवाल को लेकर भी यह दंभ पालना भी उचित नहीं है कि पहाड़ी अपनी संस्कृति की रक्षा कर रहा है। वहां पर एकांत है वह उसमें एकचित्त होकर काम कर रहा है। जिस प्रकार रस्किन बॉन्ड है वो पहाड़ में रह रहे हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वो वहां की संस्कृति को बचा रहे हैं। वे वहां पर दत्त चित्त होकर अपने लेखन में लगे हैं। सांस्कृतिक स्तर पर उच्च लोग हर जगह होते हैं। यह जरूरी नहीं कि वे पहाड़ पर हों या किसी अन्य स्थान पर वे हर जगह व्याप्त हैं। इस कारण पहाड़ का कोई खास महत्व नहीं है। वहां का एक महत्व यह है कि गर्मियों में हम पहाड़ चले जाते हैं और सर्दियों में पहाड़ से आ जाते हैं। पहाड़ को बर्बाद करने में पहाड़ी ही जिम्मेदार है। हिमालय में ज़रा सी क्षति सम्पूर्ण धरा का विनाश कर सकती है।

विशाल स्वरुप ठाकुर : अनेक बड़े साहित्यकार लोगों से मिलने से कतराते हैं। बात करने का समय नहीं देते। इसकी क्या वजह है? और साहित्य की नयी बानगी नयी फसल का भविष्य आप किस रूप में देखते हैं?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : साहित्यकार एक ऐसा प्राणी है, जो–चुप है या बोल रहा है–वह सोचता रहता है। साहित्यकार अपने लेखन के कार्य में निमग्न रहता है। वह उसमे कोई हस्तक्षेप नहीं चाहता। कई बार हम पूरा जीवन सोचने में लगा देते हैं। बहुत कम लोग लिख पाते हैं। तो उन्हें लिखने दिया जाये। लेखन का काम बहुत छोटी संख्या द्वारा किया जा रहा है। इसलिए यदि कोई भीड़ से दूर है तो रहने दो। उसमे भी समाज की भलाई है नयी पीढ़ी का भविष्य मुझे सफल दिखता है। मैं युवाओं को ज्यादा पढ़ता हूँ। और मुझे अच्छा लगता है कि वे नए मुद्दे उठा रहे हैं, वे धीरे –धीरे अपनी जगह बना रहे है। वे भाषा को समृद्धि दे रहे हैं। साहित्य को मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है। वह अपना रास्ता स्वयं बना लेते हैं। जो एक बार साहित्य में आ जाये फिर वह इससे हटना नहीं चाहता। और आगे बढ़ता चला जाता है बशर्ते वह अपने कार्य में निमग्न रहे।

विशाल स्वरुप ठाकुर : आजादी के बाद से अब तक देश के जितने भी प्रधानमंत्री रहे आप उनमे से किन से अधिक प्रभावित हैं?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : मैं हर किसी को नापसंद करता हूँ किन्तु हमारे पहले प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू जी से प्रभावित हूँ। देश के युवा प्रधानमंत्री थे। उन्होंने चलायी अच्छी योजनाएं। ये बात और है कि उनको स्थापित नहीं

कर पाए। और दूसरी बात यह कि उनकी योजनाओं को आगे की सरकारें भी नहीं चला पायी। उनके अंदर एक नया युवा जोश था। बहुत कुछ करना चाहते थे, किन्तु कुछ नीतियां उन्होंने भी ऐसी बनायी जिन्हें हम आजतक झेल रहे हैं।

विशाल स्वरुप ठाकुर : वर्तमान में मीडिया और सरकार के संबंध को आप किस नजर से देखते हैं ?

डॉ गंगा प्रसाद विमल : हमारी सरकार दक्षिणपंथी रुझान की तरफ है, वह भ्रष्टाचार को खत्म करना चाहती है लेकिन वह अपने अंदर नहीं झाँक पा रही कि उसकी गलतियां क्या है। हर संस्थान में संघी बैठे हैं और वे चाहते हैं कि संघी ही हर जगह हों। वे सम्पूर्ण राष्ट्र के बारे में नहीं सोच रहे हैं। और जो वर्तमान मिडिया है वह सम्पूर्ण रूप से बिक चुकी हैं। वही चीज दिखा रही है जो कहा जा रहा है। समाज से कोसो दूर है। उनके इस रवैये से भाषा और संस्कृति प्रभावित होगी और इससे हम विश्व में पिछड़ जाएंगे। वहां नये प्रयोगों को करने की आजादी नहीं है।

वो मुझको सोचा करती है.....

– प्रस्तुति, स्वतंत्र कुमार सिंह

वो मुझको सोचा करती है मैं उसको सोचा करता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
जब भीगे बालों में छत पर वो जुल्फ सँवारा करती है,
मैं होश गँवा देता हूँ फिर वो कत्ल हमारा करती है।
बेजोड़ मशक्कत कर आखिर एक खत पहुँचाया जाता है,
हर हर्फ सुकूँ में घुलता है जब चाँद मेरा मुस्काता है।
मैं सब कुछ कह देता हूँ पर इजहार–ए–इश्क से डरता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
जब साँझ ढले दहलीज पे वो एक दिया जलाने आती है,
महताब नजर आता है मेरी शब रौशन हो जाती है।
जब उनकी गलियाँ अपना हम हर शाम मुसाफिर होते हैं,
एक स्याह समन्दर दिखता है हम कतरा–कतरा खोते हैं।
वो जितना मुझमें सिमटी है मैं उतना रोज बिखरता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
जब नुक्कड़ पे हर रोज मेरी साइकल की चौन उतरती है,
संयोग नहीं साजिश है वो इस वक्त यहाँ से गुजरती है।
एक रोज तो आँधी आयेगी रुख बे–हिजाब हो जाएगा,
जो मिले झलक गर फकीर को वो भी नवाब हो जाएगा।
वो जितना मुझमें बाकी है मैं उतना ही तो बचता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
जब मेले में एक पायल पे उस पगली का दिल आता है,
फिर कुछ सिक्कों के चलते उसके मन को मारा जाता है।
यूँ तो अपनी हसरत के अक्स भी दाम के मारे होते हैं,
उस पायल की खातिर जेबों में चाँद सितारे होते हैं।
मायूस निगाहें खिल जाती हैं तोहफा पेश जो करता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
वक्त ठहरकर सुनता है और फिजा साज बन जाती है,
जब उँगली में जुल्फें उलझाकर धुन कोई वो गाती है।
उस माथे पर बिंदिया जैसे आगोश में चाँद की तारा हो,
कुछ सुर्ख निशाँ रुखसारों पर कुदरत ने रूप सँवारा हो।
वो सुबहा सी खिल जाती है मैं बनकर रात गुजरता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
जब चूल्हे में ईंधन न हो और आग धुआँ बन जाती है,
तो छूकर उसकी साँसें सारी राख शम्मा बन जाती है।
यूँ तो हर रोज निवाले से माँ हर एक कोना भरती है,
पर भूख जरा बढ़ जाती जब वो प्यार परोसा करती है।
मैं खा लेता हूँ जली रोटियाँ और तारीफें करता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
जब माँ की साड़ी पहन के वो कुछ पल दुल्हन बन जाती है,
और दर्पण की छाया उसके रुख पर शबनम बन जाती है।
जब घूँघट लेकर आहिस्ता वो जिक्र हमारा करती है,
खामोश दराजों से उनको एक नजर निहारा करती है।
वो मुझमें बुझ जाती है मैं उसकी नजरों में जलता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
दीदार जो उनका हो फिर नजरें कलम तलाशा करती हैं,
कुछ लफ्जों में तस्वीरें उनकी खूब तराशा करती हैं।
हम तो हर पल लिख देते हैं हर आज को कल लिख देते हैं,
है सुना कहीं एक आग है इश्क लबों को जल लिख देते हैं।
वो एक मुकम्मल गजल कोई मैं शायर पल दो पल का हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।
ये दुनियाँ वाले तो साहेब बस मजहब जात समझते हैं,
हैं जिस्म–फरोशी जहन यहाँ पर इश्क को पाप समझते हैं।
जब धर्म जाति की बंदिश उसको थोड़ा सा दहलाती है,
तो इश्क को मजहब मान वो मेरे सीने से लग जाती है।
कुछ आज बताया है किस्सा कुछ कल की खातिर रखता हूँ,
वो ख्वाब में मेरे जीती है मैं जिस लड़की पे मरता हूँ।

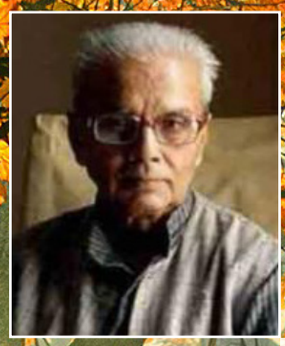

झरने लगे नीम के पत्ते बढ़ने लगी उदासी मन की

केदारनाथ सिंह

झरने लगे नीम के पत्ते बढ़ने लगी उदासी मन की,

उड़ने लगी बुझे खेतों से
झुर–झुर सरसों की रंगीनी,
धूसर धूप हुई मन पर ज्यों–
सुधियों की चादर अनबीनी,

दिन के इस सुनसान पहर में रुक–सी गई प्रगति जीवन की ।

साँस रोक कर खड़े हो गए
लुटे–लुटे–से षीषम उन्मन,
चिलबिल की नंगी बाँहों में –
भरने लगा एक खोयापन,

बड़ी हो गई कटु कानों को 'चुर–मुर' ध्वनि बाँसों के वन की ।

थक कर ठहर गई दुपहरिया,
रुक कर सहम गई चौबाई,
आँखों के इस वीराने में कृ
और चमकने लगी रुखाई,

प्रान, आ गए दर्दीले दिन, बीत गईं रातें ठिठुरन की ।

संपादक
डॉ अरविंद कुमार मिश्रा
हिंदी विभाग

सदस्य
डॉ श्रीधरम हिंदी विभाग
श्री दीपांकर इतिहास विभाग

संरक्षक
डॉ ज्ञानतोष कुमार झा
प्राचार्य

छात्र संपादक मंडल

विशाल कुमार
हिंदी विभाग तृतीय वर्ष

सौरभ मौर्य
हिंदी विभाग तृतीय वर्ष

साँईं विश्वकर्मा
इतिहास विभाग द्वितीय वर्ष

मो. आजम
हिंदी विभाग द्वितीय वर्ष

प्रतिक्षा
हिंदी विभाग प्रथम वर्ष

हर्षिता शंकर
इतिहास विभाग प्रथम वर्ष

आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय

(दिल्ली विश्वविद्यालय)

ACCREDITED GRADE 'A' BY NAAC
NIRF All India 14th Rank